काव्य वल्लरी



भारती साहित्य मन्दिर दिल्ली

काव्य वल्लरी

सम्पादक

काव्य-कलादि अनेक साहित्य ग्रन्थों के

लेखक

प्रोफेसर टेकचन्द शास्त्री, प्रभाकर,

एम० ए० एम० ओ० एल० विद्याभूषण

हिन्दी संस्कृत विभाग

दोआबा कालिज, जालन्धर शहर

प्रकाशक

भारती साहित्य मन्दिर

पुस्तक प्रकाशक

दिल्ली।

मूल्य २)

मुद्रक
रतन प्रेस, कूंचा घासीराम, दिल्ली।

विषय सूची

दो शब्द

रसिकवृन्द ! आओ, हिन्दी साहित्योपकारी एक वल्लरी की ओर आपका ध्यान आकर्षित कर, उसके षोडश पुष्पों की सुगन्धि से आपके मस्तिष्क को सुवासित करें। काव्य-वल्लरी में सोलह प्रफुल्लित कुसुम प्राचीन हिन्दी साहित्य के कवि-शिरोमणियों के रूप में प्रदर्शित किये गये हैं। यह वह पुष्प हैं, जिनकी सुगन्धि आजीवन रसिक भ्रमरावलि के मनोविनोद के लिए रहेगी। वैसे तो प्राचीन काल में हिन्दी साहित्य वाटिका को सुसज्जित करने वाले अनेक कवि कुसुम-वल्लरी को सुसज्जित करते रहे हैं, परन्तु यहां केवल सोलह कला के आधार पर केवल सोलह कवि-कुसुम ही प्रदर्शित किये गये हैं। हिन्दी साहित्य के आधार पर इन्हें क्रमशः स्थान दिया गया है। प्राचीन एवं अर्वाचीन कविता की यदि तुलना की जाय तो निश्चयात्मक पाठकवृन्द ठेठ तथा प्रचलित भाषाओं में होने के कारण नवीन कवियों की कविता मञ्जरी को ही रुचिकर समझेंगे, परन्तु प्राचीन झाँकी यहाँ इतने सरल रूप में दी गई है कि सहृदयों का हृदय इसे देखकर भी विकसित तथा प्रफुल्लित हो उठेगा। प्रत्येक काल के कवियों का ज्ञान सुगमता से ही हो जायगा और उनकी कविताओं का रसपान करने में एक प्रकार का अलौकिक आनन्द मिलेगा।

इस वल्लरी की कुसुम-पंखड़ियों का संग्रह प्रत्येक रुचि के

सहृदय के हृदय को आनन्दित करेगा। कविता सब सुगम तथा रुचिकर हैं। साहित्य की कसौटी पर परखने से सब की सब कवितायें आशा है हिरण्य ही उतरेंगी। ढूंढने पर कहीं कहीं कुन्दन की झलक भी साहित्य प्रेमियों की दृष्टि को चुन्धिया देगी। अब यह रसिकों पर ही छोड़ा जायगा कि वह स्वर्ण को स्वर्ण और कुन्दन को कुन्दन के रूप में निकाल लें। वल्लरी के पुष्पों के सम्बन्ध में पुस्तक के आरम्भ में ही पूरा २ ज्ञान करा दिया गया है। आद्योपान्त भूमिका पढ़ने के पश्चात् हिन्दी साहित्य के संक्षिप्त ज्ञान के साथ २ उनकी कविता के वास्तविक रस को भी पान करना इस पुस्तक का ध्येय है। मैं सादर यह वल्लरी साहित्य चञ्चरीकों के चरणों में अर्पण करता हूं। आशा है वह मेरे उत्साह को बढ़ाने का प्रयत्न करेंगे। यदि कोई त्रुटि भी हो तो उसके लिये क्षमा प्रार्थी हूं:—

धावतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।

विदुषामनुचरः—

टेकचन्द—

कवि

अपारे खलु संसारे कविरेव प्रजापतिः, जहाँ न जाय रवि, वहाँ जाय कवि। विश्व भर में ईश्वर के अतिरिक्त यदि दूसरा स्थान मिला है तो वह है कवि। ईश्वर को हितचिन्तक, न्यायकारी, दयालु आदि विशेषणों से संसार विभूषित करता है। कवि को भी इसी दृष्टिकोण पर साहित्यिक कसने का प्रयत्न करता है। जिस तरह ईश्वर का मानव से अखण्ड सम्बन्ध है, उसी प्रकार कवि का भी मानव से अविच्छिन्न प्रेम है। यदि ईश्वर को कवि और कवि को ईश्वर कहा जाय तो अत्युक्ति नहीं है। वेदों में ईश्वर को कवि कहा गया है—जैसे कविं पुराणमनुशासितारम्। देखने वाली बात यह है कि कवि में कौन सी ऐसी विशेषता है, जिससे हम उसे ईश्वर के समान समझने लगे हैं। संक्षिप्त शब्दों में एक ही उत्तर दिया जा सकता है कि कवि प्रकृति के करण-करण, तृण-तृण, अणु-परिमाणु, स्थूल तथा सूक्ष्म, बाह्य तथा अन्तरङ्ग रूपों को देखता हुआ, उसे मानव अन्तःस्थल में निहित कर उन दोनों का सामञ्जस्य स्थापित करता है, अर्थात् मानव में प्रकृति की और प्रकृति में मानव की झाँकी देखता है। कवि साधारण बात को भी उपादेय समझ कर ग्रहण करता है और विशेष घटना होने पर भी, जिसका मानव से कोई सम्बन्ध न हो, हेय समझ कर छोड़

देता है। कवि का हर्ष वा शोक अखिल विश्व स्थित मानव का हर्ष, शोक है। हमारे संस्कृत के आदि कवि बाल्मीकि ने देखा कि क्रौञ्चदम्पती जो कि स्वच्छन्द घूम रहे हैं, एक निष्ठुर व्याध के शराघात से ताड़ित हो क्रौञ्च धराशायी हो गया। उसके विरह से मूक भाषा में आर्तनाद करती हुई क्रौञ्ची का मनोविश्लेषण कितने मर्मस्पर्शी शब्दों में किया है :

"मा निषाद प्रतिष्ठाँ त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकं न्यवधीत् काममोहितम् ॥

विचारणीय यह है कि कवि के अतिरिक्त जङ्गमस्थावरात्मक भौतिक जगत् तथा सुख दुःखों का अभिव्यञ्जन कौन कर सकता है ? और दूसरे के लिए सहानुभूति की प्रेरणा देने वाला, और परोपकार के लिये हृदय को गुदगुदा देने वाला कवि के अतिरिक्त और कौन हो सकता है ? प्रारम्भ से आज तक कवि ने मानव का हित ही किया है। इसलिये कहा जाता है कि जो सृष्टि से रागात्मक सम्बन्ध रखता हो उसी को कवि कह सकते हैं। कवि की यही विशेषता उसे ईश्वर के साथ उच्च आसन पर आसीन होने का अधिकार देती है। और यही कारण है कि हम कला, कला के लिये उक्त सिद्धान्त को नहीं, अपितु कला जीवन के लिये, इस सिद्धान्त को मानते हैं।

कवि का श्रेणी विभाजन—

ऊपर के विचारों से यह तो स्पष्ट ही है कि कवि का प्रकाश-

रवि के प्रकाश से भी आगे है। सूर्य का प्रकाश केवल परिमित भूमण्डल पर ही पड़ता है, परन्तु कवि का प्रकाश अपरिमित कल्पना जगत् में विहार करता है। प्रश्न यह है कि क्या आज जितने कवि-नाम धारी व्यक्ति हमारे दृष्टिगोचर होते हैं, क्या वह सभी ईश्वर से उच्चतर हैं ? अथवा सभी का आदर करना चाहिये ? पर ऐसी बात नहीं है। इन कवियों की भूल भुलैयाँ में पड़कर पाठक अपने चरित्र से भी हाथ धो बैठते हैं। जैसे अधिकांश रीति कालीन कवियों की नग्न कविताओं से यह बात स्पष्ट हो जाती है। अतः पाठकों को सत् कवि जाँचने की एक कसौटी बता देते हैं। कवियों की वस्तुतः तीन श्रेणियाँ होती हैं। अग्र श्रेणी का कवि हम उसे कह सकते हैं, जिसमें पर्याप्त रूप से मौलिकता पाई जाय, जो उस समय की परिस्थितयों से पूर्ण रूपेण प्रभावित न हो, जिसकी कविताओं को पढ़ने से हृदय में एक झंजावात सो पैदा हो। जिसको कल्पना का स्वर, इतना ऊंचा हो कि पाठक उसमें आत्म बन्धुत्व सा पाये, जिसमें गहरा निरीक्षण और जिसमें कठोर सत्य का निरूपण हो, जिसने हृदय को एक बार नहीं अनेक बार गुदगुदाया हो, जिसकी रचनाएं देश-काल के बन्धनों से मुक्त हों। कठिनता यह है कि उक्त लक्षण की कसौटी पर जब हम किसी कवि को कसते हैं, तो चोटी के कवि में भी यह सभी लक्षण पूरे २ घटते दिखाई नहीं देते तब हमें कवि की द्वितीय श्रेणी की ओर झाँकना पड़ता है। जिसने अपने पूर्ववर्ती कवियों के भावों को तोड़-फोड़ कर अपनी कविता को मौलिक रूप से सजाने का प्रयत्न किया हो, जिसमें कवि का व्यक्तित्व बोलता हुआ सा प्रतीत हो, जिसकी

कविता पर देशकाल के बन्धनों का कुछ प्रभाव पड़ा हो, जिसका सृष्टि के साथ साधारण रूप से सम्बन्ध हो, जिसकी कविता का प्रभाव साधारणता से कुछ ऊंचा हो निश्चय ही वह द्वितीय श्रेणी का कवि है । मुझे विश्वास है कि अधिकाँश में जिन्हें हम अग्र-श्रेणी का कवि समझते हैं, वह द्वितीय श्रेणी में ही आते हैं । इसीलिए हमें द्वितीय श्रेणी से तृतीय श्रेणी की ओर भी दृष्टिपात करना पड़ता है । जो मानव का हित चाहते हैं, और समय के अनुसार देश काल की परिस्थितियों को देखते हुए मानव को ऊबड़-खाबड़ मार्गों से सावधान करते जाते हैं, जिनकी कविता मृत्यु के सौ पचास वर्ष पश्चात् समाप्त तो नहीं, पर सुप्त सी हो जाती है । जो अपने समय में ऊपर के दोनों श्रेणियों के कवियों से साधारण जनता पर अधिक प्रभाव डालते हैं, वह निश्चयात्मक तृतीय श्रेणी के लेखक हैं । इस कसौटी पर कसने से रीति कालीन वीर-रस कवि तृतीय श्रेणी के अन्तर्गत ही हैं । अब एक और श्रेणी है जिसको चतुर्थ श्रेणी कहना ही उपयुक्त सा प्रतीत होता है:—चतुर्थ श्रेणी के कवियों के लिये "आहूतेषु विहङ्गमेषु मशको नायान् पुरोवार्यते" अर्थात् पक्षियों के बुलाने पर यदि कोई मच्छर भी आ धमके तो उसे भी कोई दूर नहीं हटाता, अपितु वह स्वयं ही लज्जा के मारे दूर हो जायगा । ठीक यही बात हमारे चतुर्थ श्रेणी के कवियों की है । न तो इन बेचारों का भाषा पर अधिकार होता है, भाव तो इन के पास फटकने ही नहीं पाते, छन्द, गति, यति तो इन से कोसों दूर भागती है। पद्यखण्डापहरण, भाषा भाव, तथा वाक्यापहरण ही इनका उच्च-

कोटि का कवित्व होता है। तुक बन्दी को ही यह रस समझते हैं। यदि इन की कविता पर कोई दोष लगाये, तो 'निरंकुशाः कवयः' कहकर यह पीछा छुड़ाते हैं। आज-कल के बहुत से छायावादी तथा रहस्यवादी कवि इसी श्रेणी में हैं, जो कि प्रसाद, निराला, पन्त आदि का अनुकरण तो करते हैं किन्तु सर्वथा असफल रहते हैं। और अपनी भाषा तथा भाव को अमूर्त तथा असीम तक ही सीमित रखते हैं। इसलिये सहृयों को चाहिये कि उक्त चतुर्थ श्रेणी के कवियों से बचें, क्योंकि वह साहित्य कानन कुसुम के कण्टक ही नहीं अपितु कीट हैं।

कविता क्या है: ?—

मम्मटाचार्य ने काव्यप्रकाश में लिखा है कि नियतिकृत नियमरहितां, ह्लादैकमयीमनन्य परतन्त्राम्, नवरस रुचिराँ, निर्वृ तिमादधति भारतिः कवेर्जयति। अर्थात् कवि की सृष्टि ब्रह्मा की सृष्टि से उत्कृष्ट है, ब्रह्मा की सृष्टि में नियम के साथ साथ परतन्त्रता है, किन्तु कवि की सृष्टि कवि के आधीन होने के कारण बन्धनमुक्त होने के साथ २ स्वतन्त्र है। ब्रह्मा की सृष्टि में हर्ष-शोक, सुख-दुःख सभी कुछ पाया जाता है, पर कवि की सृष्टि में केवल हर्ष तथा सुख का ही साम्राज्य है, वहाँ दुःख भी सुख में परिणित हो जाता है, ब्रह्मा की सृष्टि में मधु, लवण, कटु, कषाय, चित्र, तथा तिक्त रूप से छः रस हैं और इनमें भी बहुत से अप्रिय हैं, परन्तु कवि की सृष्टि में श्रृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक वीभत्स, अद्भुत, तथा शान्त रूप से ६ रस हैं। सभी प्रिय हैं। इसलिये कहा जाता है कि ब्रह्मा की सृष्टि से कवि की सृष्टि

उच्चतर है। बस यही कवि की सृष्टि कविता कहलाती है। जो वस्तु जितनी अधिक प्रिय होती है, उस पर जनता का रुचिवैविध्य होने के कारण विचार संकुल इतना बढ़ जाता है कि साधारण रूप में तो वस्तु भले ही समझ में आ जाय, किन्तु विचार संकुल के झमेले में पड़ कर सुकुमार मति पाठकों की बुद्धि इतो भ्रष्टा ततो भ्रष्टा वाली उक्ति को चरितार्थ करती है और वह निश्चय ही नहीं कर सकते, वस्तुतः कविता है क्या ? यदि आज हम भी, 'कविता क्या है' इस विषय पर भिन्न २ विचार एकत्रित करने लगें तो प्राचीन भारत के आचार्यों के अर्वाचीन भारतीय आलोचकों के नये, नवीन तथा प्राचीन पाश्चात्य विद्वानों के विचार दें तो एक विस्तृताकार ग्रन्थ प्रस्तुत हो जायगा तथा हम विस्फारित नयनों से किंकर्तव्य विमूढ़ से हो इतस्ततः देखेंगे। पश्चिमी विद्वानों के किये हुए कविता के लक्षण तो प्रायः अपने दृष्टिकोण के ही ठहरते हैं, तथा आधुनिक भारतीय विद्वानों के दिये गये विचार हृत्तन्त्री की सूक्ष्मतम तारों को झंकृत करते हुए से दृष्टिगोचर होते हैं। अतः यह सभी लक्षण अल्पवयस्क रसिकों के लिए समीचीन नहीं ठहरते। अतः प्राचीन आचार्यों के विभिन्न मत का दिग्दर्शन कराना उपयुक्त प्रतीत होता है।

[१] मम्मटाचार्यः—दोष रहित, गुणयुक्त तथा अलंकार विभूषित अथवा कहीं अलंकार न भी हो ऐसी कृति को काव्य कहते हैं।

[२] रस गंगाधरः—अलौकिक आनन्दप्रद वस्तु को काव्य कहते हैं।

[३] विश्वनाथः—सरस उक्ति का नाम ही काव्य है।

[४] ध्वन्याकार:---जिस प्रकार सितार की तार बहुत समय तक झङ्कार पैदा करती है, उसी प्रकार जिस लेखक की रसमयी उक्तियों से हृदय में पर्याप्त समय तक झङ्कार पैदा हो--ऐसी ध्वनि को ही कविता कहते हैं ।

परन्तु इन सबका निष्कर्ष यही है कि कवि की ऐसी कृति, जिससे अलौकिक आनन्द की उपलब्धि हो, जिससे हृदय की भावनाओं को कुछ त्वरा मिले, जिसने जीवन में यथार्थ की झाँकी देखी हो, जिसमें आनन्द के साथ २ शिक्षा का अनुभव हो, जिसका उल्लास कान्ता सुख से भी अधिक कमनीय एवं हृदयङ्गम हो, जो उदय होते सूर्य को, झर झर करते हुए झरने को, नक्षत्र राशि के साथ सुसज्जित सुधाँशु को, अनेक व्याधि ग्रस्त दयनीय दरिद्र को, उच्च अट्टालिकाओं तथा रम्य प्रासादों में विद्युद्दीप जलाकर शृंगारमय जीवन व्यतीत करनेवाले रसिक को, एक दृष्टि से देखता है, जिसकी दृष्टि में, धनिक जितना उपादेय है, रङ्क की महिमा उससे भी बढ़कर है, जो आनन्दप्रद वस्तुओं को प्रेम से निहार कर अपने हृदय को प्रफुल्लित कर लेता है। वहाँ वह घृणित दृश्यों का वर्णन भी द्विगुणित भाव से करता है। अर्थात् जिसकी दृष्टि सूक्ष्म से सूक्ष्म तथा स्थूल से स्थूल सभी पर जाती है, और उनका अभिव्यञ्जन वह इतनी अच्छी तरह करता है कि वह दृश्य पाठक के हृदय में धंसता हुआ चला जाय, ऐसी कवि की कृति को ही कविता कहते हैं:---

कविता का महत्व:--

स्वभाव से ही मानव सौन्दर्योपासक है, सौन्दर्य से उसका अनादिकाल से अनुराग है। किसी भी सौन्दर्यमयवस्तु को जब

मानव अपने भावनानुकूल देखता है, तभी मुग्ध हो जाता है। या यूं कह सकते हैं सरसता तथा सौन्दर्य ही मानव का जीवन है, दूसरी वस्तु का मानव चिरकाल से सुखाकाँक्षी रहा है। यह जानते हुए भी सुख दुःख सम रूप से आते हैं। दुख को अनिच्छा से तथा सुख को स्वेच्छा से भोगता है, क्यों कि सुःख मानव को आनन्द पहुंचाता है। इससे सिद्ध हुआ कि मानव में आनन्द तथा सौन्दर्य का सामञ्जस्य जितना भी अधिक हो उतना ही वह उसे न्यून समझता है। उक्त दोनों प्रवृत्तियों की पूर्ति कविता द्वारा ही हो सकती है। कविता पढ़ने से अमन्दानन्दसन्दोह की उपलब्धि होती है। कामिनी की भांति उसका ललित पद विन्यास सरसता तथा लावण्यता का सञ्चार करता है । इसीलिए ललितकलाओं में काव्य का स्थान सर्वोपरि है। कविता का मानव हृदय से अविच्छिन्न सम्बन्ध होने के कारण निश्चय ही इसकी उपयोगिता तथा महत्व जगत् व्यापी है क्योंकि जिस वस्तु को हम हृदय से प्यार करते हैं, उस पर सर्वस्व न्यौछावर करने को प्रस्तुत हो जाते हैं। कविता हमारे हृदय की निगूढ़तम विभूति हैं अतएव कविता का उच्च स्थान है। उक्त विवेचना से कविता का आकर्षण भी स्पष्ट है ।

हिन्दी कविता का विकास: -

जिन दिनों में हिन्दी कविता का सूत्रपात हुआ था, वह दिन अशान्ति तथा अस्त व्यस्तता के दिन थे । जिस प्रकार ग्रीक साहित्य का प्रारम्भ वीर गीतात्मक रचनाओं से हुआ उसी प्रकार हिन्दी साहित्य का प्रारम्भ भी वीर गाथात्मक रचनाओं से ही

हुआ। हर्षवर्धन के राज्य समाप्ति के साथ २ हिन्दू जाति की रही सही एकता भी समाप्त हो गई। राजपूत आत्ममानी होकर छोटे २ राज्यों में बंट गये तथा एक दूसरे पार्श्ववर्ती राज्य को अपना घोर शत्रु समझने लगे। इनका वीरता प्रदर्शन विवाहों तथा गौनों में हुआ करता था, और अपनी विलासिनी प्रवृत्तियों को शान्त करने के लिए यह असंख्य निरपराध सिपाहियों को धराशायी बना देते और इसी बहाने अनेक मित्र राज्यों को भी शत्रु बना लेते। इधर धर्म्म में बहुत ही उथल पुथल थी। बुद्ध के अहिंसा वाद ने जनता को कायर तो बना ही दिया था, सहस्रों ऐसे मत मतान्तर भी चल पड़े थे जो एक दूसरे मतावलम्बी को घोर शत्रु समझते थे। उदाहरण के लिये वाम मार्ग में दश मत, शैव, शाक्तक, वज्रजाती सम्प्रदाय, नाथ पन्थ इत्यादि। राजनैतिक वातावरण से अशान्त तथा धार्मिक चपेटों से ताड़ित जनता की अशान्त मनोवृत्ति उस समय कुछ भी न सोच सकी। अब वह युग न रहा था कि एक २ कविता लिखकर राजा भोज से लाख २ रुपया पाया जाय। उस समय तो ऐसे साहित्य की आवश्यकता थी जो यवनों के आक्रमणों को रोकने वाले तथा अपना बलिदान करने वाले योद्धाओं के उत्साहवर्धन के लिये कविताएं लिखी जायें तथा समय पड़ने पर वह कवि तलवार लेकर युद्ध-भूमि में भी उतर आयें, इस प्रकार की कविताएं भाटों द्वारा लिखी गईं। इसी लिये हिन्दी साहित्य के आदि काल को चारण काल कहते हैं, चारण कहने का दूसरा यह भी अभिप्राय है कि भाट जहाँ देश भक्तों की प्रशंसा करते वहाँ कहीं २ देश द्रोहियों की भी प्रशंसा कर जाते थे। जैसे भट्ट केदार मधुकर ने जयच न्द्र

प्रकाश लिखा। इन वीर गीतात्मक रचनाओं को रासो कहा जाता था। जैसे वीसल देव रासो, पृथ्वीराज रासो। इस काल का सुप्रसिद्ध लेखक चन्दवर दाई हुआ है। इसकी शैली मुक्तक तथा प्रबन्धक दोनों रूपों में पाई जाती है। इसका समय १०५० से लेकर १३७५ तक माना जाता है। इस काल को श्री रामचन्द्र शुक्ल जी वीर गाथा काल तथा श्री रामकुमार वर्म्मा चारण काल कहते हैं।

भक्ति काल:-

समय ने पलटा खाया। सामाजिक मनोवृत्ति वैसी न रही। तलवार पकड़ने वाले हाथों ने माला पकड़ी। राजा को ईश्वर समझने वाली जनता 'कोऊ नृप होय हमहू का हानी' कहकर राजा तथा उसके राज्य के प्रति उदासीन रहने लगी। जल-कर, आय-कर आदि अनेक करों के साथ हिन्दुओं को हिन्दू होने का भी कर देना पड़ता था। गुलाम खिलजी, तुग़लक आदि सभी यवन राजाओं ने हिन्दु जाति पर अत्याचार करने आरम्भ किये। समाज की मनोवृत्ति एक साथ ही चीत्कार कर उठी। हिन्दु जाति की बहु बेटियाँ हर्म्यों की शोभा बढ़ाने के लिए लाई जाती थीं। इसी लिए जनता में भगदड़ मच गई। नाथ पन्थी अपने योग को लिये घूम रहे थे। इधर शङ्कराचार्य का अद्वैतवाद अपनी डफली बजा रहा था। धर्म में भी जनता को शान्ति पहुंचाने के लिये अनेक रूप हो गये थे। ऐसे समय में भक्ति-काल का उदय हुआ। यह समय १३७५ से १७०० तक निरन्तर चलता रहा। इस समय दो धाराएं चलीं निर्गुण और सगुण। निर्गुण की ज्ञानाश्रयी तथा प्रेम मार्गी सूफ़ी रूपेण दो शाखाएं बनीं। ज्ञानाश्रयी में

महात्मा कबीर तथा प्रेम मार्गी में मलिक महोम्मद ज्यायसी प्रसिद्ध हैं। सगुण धारा में राम-भक्ति तथा कृष्ण-भक्ति रूप में दो शाखाएं हुई। राम-भक्ति में गो स्वामी तुलसीदास तथा कृष्ण-भक्ति में महात्मा सूरदास प्रसिद्ध हैं। इस काल का हिन्दी साहित्य में विशेष महत्व है।

रीति काल:—यह काल १७०० से १९०० तक माना जाता है। इसमें शृङ्गार की रचनाओं की प्रधानता है। जब मुसलमान राजाओं ने हिन्दू जाति के साथ सामञ्जस्य कर लिया। उन्हें धन आदि देकर सन्तुष्ट किया। यहाँ तक कि अकबर के समय में रोटी-बेटी का भी सम्बन्ध हो गया। अत्याचारों की आन्धी थम गई। जीवन में सुख शान्ति की अमृतमीयी वृष्टि होने लगी, तब लेखकों ने भी मुसलमान राजाओं के अनुकूल फारसी साहित्य के अनुकरण पर शृंगारिक कविताएं लिखनी आरम्भ की। वस्तुतः भक्ति-काल में हिन्दी साहित्य की जितनी अधिक उन्नति हुई रीति-काल में उतनी ही अवनति हो गई। उसके कई कारण थे। (१) कवि और आचार्य में अन्तर जाता रहा। (२) केशव तथा कृपाराम आदि ने जो रस निरूपण किया वह दण्डी के काव्यादर्श और कुवलयानन्द तथा चन्द्रा लोक के आधार पर था। पर खेद है कि यह तीनों पुस्तकें संस्कृत साहित्य के अलङ्कार ग्रन्थों में अस्पष्ट मानी गई हैं। इसके पश्चात् मनिराम आदि ने मम्मट के काव्य प्रकाश तथा विश्वनाथ के साहित्य दर्पण के आधार पर अलंकार निरूपण कर, अलंकारों का कुछ परिष्कृत मार्ग दिखलाया। मनिराम के परवर्ती आचार्यों ने भी लक्षणों में प्रायः

त्रुटियाँ ही की। रीति काल में दृश्य काव्य का तो कोई वर्णन हो ही नहीं सका। इन ग्रन्थकारों ने कविता को इतने बन्धनों से जकड़ दिया कि वह स्वयं ही उस पर चल न सके। इसी लिये कहा गया कि भक्ति काल में जो उन्नति हुई रीति काल में उससे बढ़ कर अवनति हुई। इस समय के लेखक, मनिराम, भूषण, भिखारीदास, बिहारी तथा देव आदि हैं।

आधुनिक काल:—

कभी २ जिस वस्तु की हम कल्पना भी नहीं कर पाते, वह भी सामने आजाती है। कौन जानता था कि एक व्यापारी विदेशी जाति कभी इतने विशाल भारत पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लेगी, पर हो ही गया और सहन भी किया गया। उसके पश्चात् जो २ कठिनाइयाँ आईं उनका उल्लेख प्रस्तुत प्रकरण में तो नहीं हो सकता, किन्तु उनका रोना, परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप में आधुनिक साहित्य में स्पष्टतया मिल जाता है। जब हिन्दू और मुसलमान दोनों पेट की अग्नि में जलने लगे। दोनों का सुख-साम्राज्य स्वाहा हो गया, तब हिन्दी साहित्य अपनी श्रृंगार की केंचुली को उतार राष्ट्रीयता का शंखनाद पूर कर भारतीयों को जगाने लगा। आधुनिक काल के सर्वश्रेष्ठ लेखक थे भारतेन्दु हरिश्चद्र। भारतेन्दु से मैथिली शरण गुप्त तक प्रायः एक जैसी श्रेणी के ही लेखक पैदा हुए। कुछ समय पश्चात हमारे कवि मूर्त में अमूर्त तथा ससीम में असीम का अनुभव करने लगे। उनकी यह भावना छायावाद तथा रहस्यवाद दो धाराओं में बही। अब तो वादों का तांता सा बन्ध गया है। जैसे यथार्थवाद, आद-

र्शवाद, दुःखवाद, निराशावाद, हालावाद, प्रगतिवाद, पलायनवाद अध्यात्मवाद, वैष्णववाद, राष्ट्रीयवाद, गांधीवाद इत्यादि । इन वादों पर तथा इनसे सम्बन्ध रखने वाले कवियों पर इसलिये विवेचना नहीं की जाती कि उनका सम्बन्ध प्रस्तुत पुस्तक से नहीं है। फिर भी इतना जान लेना आवश्यक है कि आज की कविता आधुनिक वादों से ऊपर उठ कर पूंजीपति तथा मजदूरों की समस्याओं पर आ डटी है। इन स्वार्थप्रिय अत्याचारियों को भस्मसात् करना चाहती है। प्रेमी का अग्निगान इसी प्रकार की रचनाओं के अन्तर्गत है। आधुनिक काल के सुप्रसिद्धतम लेखक यह हैं गुप्त, प्रसाद, पन्त, निराला, श्री रामकुमार वर्म्मा, सोहनलाल द्विवेदी, उदयशंकर भट्ट, मिलिन्द, प्रेमी, बच्चन । स्त्री कवियों में सुभद्राकुमारी चौहान, महादेवी वर्म्मा, रामेश्वरी चकोरी, तारा पाण्डे, इत्यादि। बहुत से सुप्रसिद्ध लेखक तथा लेखिकाओं के नाम पुस्तक गौरव भय से नहीं दिये। वस्तुतः आधुनिक काल अपनी उन्नति की चरम सीमा पर है। भगवान् करे कि हमारा हिन्दी साहित्य प्रत्येक दृष्टि से फूले फले । हम तो यह भी चाहते हैं कि जिस प्रकार बंगाल में रवि बाबू के गीत गाये जाते हैं, उसी प्रकार हमारे भी हिन्दी साहित्य के गीत घर घर में गाये जायं।

प्रस्तुत संग्रह:—

आज प्रस्तुत संग्रह को पाठकों तक पहुंचाते हमें अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है। इस सम्बन्ध में दो बातें कह देना आव-

श्यक हैं। प्रस्तुत पुस्तक का नाम काव्य वल्लरी है। प्राचीन काल में काव्य शब्द का अर्थ व्यापक रूप में लिया जाता था, जिसका तात्पर्य कविता, नाटक उपन्यास कहानी आदि से होता था। जैसे मम्मटाचार्य का काव्य प्रकाश एक लक्षण ग्रन्थ है । जिसमें काव्य के सभी अंगों पर विवेचना की गई है। काव्य शब्द को दूसरे रूप में साहित्य भी कहते थे जैसे विश्वनाथ का साहित्य दर्पण। आज कविता के सामूहिक रूप को ही काव्य कहते हैं। इसलिये हमने भी काव्य शब्द का प्रयोग इसी रूप में ही किया है। इसमें प्राचीन काल की कविताओं का संग्रह है। इसलिये वीर गाथा काल से लेकर रीति काल तक आने वाले मुख्य २ कवियों को हमने ले लिया है। कवियों का निर्वाचन भी श्री रामचन्द्र शुक्ल के इतिहास के आधार पर किया है। चन्द वरदाई की भाषा कठिन तथा दुरूह होते हुए भी वीर गाथा काल का प्रतिनिधि होने के कारण इसे पुस्तक में स्थान दिया है । यह पूरा ध्यान रक्खा है, कि उसका कोई सरस एवं सुगम स्थल ही दिया जाय। निर्गुण ज्ञानाश्रयी में कबीर तथा सुन्दर को स्थान दिया है। राम-भक्ति में तुलसी और कृष्ण-भक्ति में सूर, प्रेम-मार्गी सूफ़ी शाखा में ज्यायसी । कृष्ण कविता का महत्व अधिक होने के कारण तथा अपने समय में प्रसिद्ध होने के कारण मीरा और रस खान को भी हम छोड़ नहीं सके । मुसलमान होते हुए भी विशाल हृदय रखने वाला रहीम एक उच्च कोटि का लेखक था। केशव यद्यपि कविता का प्रेत कहा जाता है तथापि साहित्य मीमाँसा के लक्षण ग्रन्थों का जो मार्ग उन्होंने खोला, उसके लिये हिन्दी साहित्य सदा के लिये उनका ऋणी रहेगा। इसलिये केशव को भी पूरा स्थान मिला। महा कवि भूषण, हिन्दू जाति मेंक ए

अद्भुत वीरता का सञ्चार करने वाले थे, आज चाहें उन्हें किसी रूप में बनाया जाय, परन्तु वस्तुतः उस समय के वह एक जाति उद्धारक थे। बिहारीलाल शृङ्गार की रचनाओं में अनुपम हैं, अतः इन दोनों महानुभावों को भी पुस्तक में स्थान दिया गया है। वृन्द, गिरधर कविराय, आलम तथा बाबा दीन दयाल गिरि रीति काल के फुटकल लेखकों में हैं, अतः पुस्तक में इनका भी पूरा आदर किया गया है। हमने पूरा प्रयत्न किया है, जो कवि जिस रस का प्रतिनिधि है, उसकी वही रचना दी जायें, इस लिये हमने बिहारी की कहीं २ शृंगारिक रचना भी दे दी हैं। लेखकों के परिचय कविताओं के साथ २ नहीं, प्रत्युत पहिले ही दे दिये गये हैं। कठिन शब्दों के अर्थ अन्त में नहीं कविताओं के साथ ही दिये गये हैं जिस से कविता पढ़ते समय पाठकों को कविता समझने में कठिनाई न हो। पहिले हिन्दी के प्रारम्भिक प्रवेश के इच्छुकों के लिये भूमिका भी रख दी है। हमें विश्वास है कि यदि पाठक निष्पक्ष हो कर भली भान्ति पढ़ेंगे तो उन्हें साहित्य के प्राचीन काल का ज्ञान ठीक रूप से हो जायगा। यह पुस्तक प्राचीन काल की झलक है।

पुस्तक में कविताओं का संग्रह करते समय श्री सोमदत्त काश्यप शास्त्री ने मुझे कई पुस्तकों के प्राप्त करने में सहायता दी, जिसके लिये मैं उनका धन्यवाद करता हूँ।

टेकचन्द शर्म्मा

लेखक-परिचयः—

चन्द बरदाईः—

हिन्दु कवि हिन्दवान कवि, हिन्दी कवि रसकन्द ।
सुकवि, महाकवि, सिद्धकवि धन्य २ कवि चन्द ॥

(वियोगी हरि वीर सतसई)

जो स्थान संस्कृत साहित्य में आदि कवि बाल्मीकि का है, वही स्थान हिन्दी साहित्य में महाकवि चन्द का है । यह एक पंजाब का सौभाग्य था कि महाकवि चन्द का जन्म लाहौर नगर में हुआ । इनका जन्म सम्वत् १२२५, तथा निधन सम्वत् १२४९ है । कहा जाता है कि चन्द तथा पृथ्वीराज का जन्म और मृत्यु एक ही समय पर हुई थी । जैसे नीचे लिखे उद्धरण से पता लगता है

(इक दीह उपज, एक दीह समाय क्रम) चन्द जैसे कि ऊपर बतलाया गया है पृथ्वीराज के समकालीन थे । पृथ्वीराज के दरबार में इनका मान भी बहुत था । इन्होंने दो विवाह किये थे, जिनसे ११ सन्तान पैदा हुईं । १० लड़के और एक लड़की । चौथा लड़का जलहण विशेष योग्य था । इनका एक प्रबन्ध काव्य पृथ्वीराज रासो पाया जाता है । रासो की सारी कथा, इन्होंने अपनी पत्नी गौरी को सुनाई है । यह महाकाव्य ढाई हजार पृष्ठ का है और इस के ६९ समय (अध्याय) हैं । जिस प्रकार काद-म्बरी के विषय में यह प्रसिद्ध है, कि इसका उत्तरार्ध बाणभट्ट के पुत्र पुलिंद भट्ट ने पूरा किया था, उसी प्रकार चन्द के सम्बन्ध में भी यह प्रसिद्ध है कि चन्द और महाराजा पृथ्वीराज के

गज़नी जाने पर और वहीं मृत्यु होने पर रासो के शेष १० समय अर्थात् अध्याय जलहण ने पूरे किये थे। इसमें महाराज पृथ्वीराज की छोटी से छोटी घटना का वर्णन है। इस रासो पर कई लोगों का सन्देह भी है और इसे वह चन्द के पश्चात् लिखा हुआ जाली ग्रन्थ बताते हैं। इस मत में गौरीशंकर हीराचन्द ओझा का विशेष स्थान है। वह उक्त रासो की प्रति पर पूर्ण रूप से सन्देह प्रकट करते हैं। मोहनलाल विष्णुलाल पाण्डे तथा मिश्र बन्धु रासो को प्रामाणिक मानते हैं। इस प्रकार रासो के विषय में अभी तक मतभेद ही है। अस्तु जो भी हो हिन्दी साहित्य का प्रथम प्रबन्ध काव्य होने के कारण आदरणीय तो यह अवश्य है, पर यह रासो नाही साहित्यकों की उपादेय वस्तु है और नाही ऐतिहासिकों की। प्रस्तुत ग्रन्थ में वीर गाथा काल का प्रतिनिधि होने के कारण इस रासो का कुछ भाग दिया गया है।

रासो की भाषा डिंगल तथा पिंगल दोनों प्रकार की है। कहीं २ प्राकृत के पुराने रूप मिलते हैं और कहीं २ बिल्कुल आधुनिक आ जाते हैं। घटनाएं प्रायः असंगत सी हैं। तैमूर और चंगेज़ आदि के भी नाम आ जाते हैं। विविध प्रकार के छन्दों का प्रयोग है, वस्तुतः भाटों के परिवर्तन, परिवर्धन तथा परिवर्जन से इस समय जो रासो की प्रति मिलती है, उसमें कुछ भी स्थिरता दृष्टिगोचर नहीं होती। यही कारण है कि इसकी भाषा तथा घटनाओं में असंबद्धता पाई जाती है।

(२) महात्मा कबीर:—

घोर तिमिर में प्रकाश की रेखा पैदा करने वाले, हिन्दू,

मुसलमानों में शान्ति स्थापित करने वाले, महात्मा कबीर का ऋण हमारे हिन्दी साहित्य पर बहुत अधिक है। खेद है कि ऐसे महात्मा के सम्बन्ध में हमें कुछ भी पता नहीं। यह सन्त लोग अपने सम्बन्ध में कुछ भी तो नहीं लिखते थे। इस लिए किम्वदन्तियों के आधार पर ही हमने इनके जीवन का कुछ निश्चय करना है। कबीर ने एक मत चलाया, जिसका नाम कबीर पन्थ था। उस पन्थ ने कबीर की घटनाओं के साथ २ और भी अद्भुत घटनाओं का सम्मिश्रण कर उसके जीवन को घने आवरण में आवृत्त कर दिया। सच है। किसी महात्मा ने लिखा है—मेरे अनुयायियों से डरो। कबीर का जन्म सम्वत् १४५६ और मृत्यु १५७५ में हुई थी। यद्यपि बहुत से भक्त इनका जन्म १२०५ और मृत्यु १५०५ मानते हैं, परन्तु इन वादविवादों के झमेले को अनावश्यक समझते हुए कबीर का सही रूप ही पाठकों के सामने रखना उचित है। १४५६ ही इनका सही जन्म दिन सर्व सम्मत है जैसे निम्न-लिखित दोहे से स्पष्ट है।

"चौदह सौ पचपन साल गए, चन्द्रबार एक ठाठ ठए।
जेठ सुदि बर सादूत को पूर्णमासी प्रकट भये॥

इनके बाल्य काल के सम्बन्ध में केवल इतना ही ज्ञान है कि नीरू तथा नीमा दम्पति ने इस नवजात शिशु को लहर तारा नाम के तालाब से पाया। यह शिशु वहाँ कैसे आया? इस सम्बन्ध में निश्चयात्मक कुछ नहीं कहा जा सकता। प्रतीत यह होता है कि कोई विधवा ब्राह्मणी लोकलज्जा भय से उसे वहाँ छोड़ गई होगी, और दयार्द्र होकर उस दम्पति ने उसे उठा लिया। ज्ञानी तो वह थे ही अतः ज्ञान पिपासा को शान्त करने

के लिये गुरु रामानन्द से दीक्षा लेना ही उचित समझा। जब रामानन्द जी ने इन्हें दीक्षा देने में आनाकानी की तब कबीर प्रातः काल से पहिले ही मणिकर्णिका घाट की सीढ़ियों पर जा लेटा। स्नान करने के लिए आये हुए रामानन्द जी के चरण कबीर पर पड़े। तब स्वाभाविक उनके मुख से राम राम की ध्वनि निकली। कबीर ने उस राम मन्त्र को ही गुरु मन्त्र समझा और अन्त तक उसी राम नाम का जाप करते रहे। कबीर ने विवाह भी किया था। इनकी पत्नी का नाम लोई था। जान पड़ता है कि वनखण्डी वैरागी को लोई में लिपटी हुई मिलने के कारण इस का नाम लोई रक्खा गया होगा। कबीर ने अपने विवाह को स्वयं ही माना है।

"नारी तो हम ने करी, पाया नहीं विचार।"

इनकी दो सन्तानें थी। एक लड़का और एक लड़की। लड़के का नाम कमाल था। जैसा कि कहा गया है:—

बूड़ा वंश कबीर का उपजा पूत कमाल।

इनके विचार उदार थे। हिन्दू और मुसलमान दोनों के पाखण्डों का यह खण्डन करते थे। इसीलिये दोनों के ही कोपभाजन बने रहते थे। अन्त में यह काशी को छोड़ मगहर में आगये। १५७५ में वहीं इनकी मृत्यु हुई। जैसे कि निम्न लिखित दोहे से स्पष्ट है:—

"सम्वत पन्द्रह सौ पछतरा, कियो मगहर को गवन।"
माघ सुदी एकादसी रलौ पवन में पवन॥

कहा जाता है कि जब उनकी मृत्यु हुई हिन्दू मुसलमानों में

आपस में झगड़ा हो गया। हिन्दू जलाना चाहते थे और मुसलमान दबाना। जब नोबत झगड़े तक की आ पहुंची तब चादर उठाई गई परन्तु फूलों के अतिरिक्त कुछ न निकला। आधे २ फूल हिन्दू मुसलमानों ने बाँट लिये। जान पड़ता है कि अपने गुरु का गौरव दिखलाने के लिये यह किम्वदन्ती उनके भक्तों की बनाई हुई है।

कबीर की भाषा:—

वैसे तो कबीर ने लिखा है कि मेरी बोली पूर्वी, पर देखने में उसमें पूर्वी का कोई विशेष अंश नहीं पाया जाता। कहीं पंजाबी, कहीं संस्कृत, कहीं अरबी, कहीं फारसी, कहने का अभिप्राय यह है कि उनकी भाषा एक सधुक्कड़ी सी है। अलङ्कारों का वर्णन भी उन्होंने बड़े सुन्दर ढंग से किया है। रहस्यवादी होने के कारण इनकी कविता में, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा तथा अन्योक्तियों की भरमार है। कबीरदासकी ५७ पुस्तकें बताई जाती हैं; जिनमें १७८३० पद्य हैं। इन पद्यों को तीन भागों में बाँटा गया है, साखी, सबद, रमैनी। इनकी वाणी का संग्रह सिक्खों के गुरु ग्रन्थ साहिब में भी मिलता है। वस्तुतः सन्त मत के जितने सिद्धान्त हैं, वह सब कबीर दास के ही हैं। कबीर के पश्चात् शेष सन्त कवियों ने कबीर की उक्तियों को तोड़ मरोड़ कर दुहराया है। सन्त कवियों में कबीर का सर्वोच्च स्थान है। रहस्यवादी वह इतनी ऊंची श्रेणी के हैं कि कहा जाता है कि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कबीर की उक्तियों को ही निचोड़ा हुआ है। अनपढ़ होते हुए महात्मा कबीर प्रखर प्रतिभाशाली थे। इनकी सूक्तियों तथा भक्ति सम्बन्धी

दोहों को गा गा कर आज भी साधु लोग पेट पालते हैं। श्री डा० इन्द्रनाथ जी मदान ने अपनी हिन्दी कलाकार पुस्तक में कबीर तथा महात्मा गाँधी की तुलना करते हुए बतलाया कि यदि महात्मा गाँधी भी उस समय होते तो जनता की भलाई के लिये वही कुछ करते जो कबीर कर गये हैं। इससे सामाजिक दृष्टिकोण से भी कबीर का स्थान कुछ कम नहीं। सूर और तुलसी तो हिंदी साहित्य गगन के सूर शशि हैं, पर तृतीय स्थान यदि रक्खा जाय तो कबीर ही आ सकते हैं। इसलिये यह कहना अत्युक्ति न होगी कि कबीर का स्थान हिंदी साहित्य क्षेत्र में आदरणीय है।

(३) सुन्दरदासः—

सुन्दरदास का जन्म १६५३ और मृत्यु १७४६ में हुई। यह सभी सन्त कवियों से निराले हैं। पहिले जितने भी सन्त कवि हुए हैं, वह प्रायः अनपढ़ और अशिक्षित थे। उनका ज्ञान सत्-संगति तथा बहु श्रुतता तक ही सीमित न था। पर सुन्दरदास व्याकरण, साहित्य, वेदान्त आदि अनेक विषयों के प्रकाण्ड विद्वान् थे। यह दादूदयाल के शिष्य थे। इनकी पुस्तकों में सुन्दर विलास बहुत ही सुन्दर पुस्तक मानी जाती है। इन्होंने कवित्त तथा सवैय्या छन्द का प्रयोग अधिक किया है। इनकी भाषा पूर्व कवियों की भाँति ऊबड़ खाबड़ नहीं, अपितु परिष्कृत तथा मंजी हुई भाषा है। यह जाति के बनिये थे। कहा जाता है बहुत सुन्दर होने के कारण, इनके गुरु ने इनका नाम सुन्दरदास रक्खा था। इन के मत में निरर्थक बोलना, तथा दोष युक्त कविता करना साहित्य तथा भाषा दोनों का घोर अपमान करना था। इन पर 'महीयाँसो मित भाषिणः' की उक्ति पूर्ण रूप से लागू होती है। कविता के सम्बन्ध में इनके विचार यह हैं—

बोलिए तौ तब जब बोलिबे की बुद्धि होय।
ना तौ मुख मौन गहि चुप होय रहिए।
जोरिये तब जब जोरिबे की रीति जानै,
तुक छन्द अरथ, अनूप जामें लहिये ॥
गाइये तो तब जब गाइयें को कण्ठ होय,
श्रवण के सुनही मनै जाय गहिये।
तुक भंग, छन्द भंग, अरथ मिलै न कछू
सुन्दर कहत ऐसी बानी नाहिं कहिए ॥

सृष्टि के विषय में इन्होंने पूर्ववर्ती सन्त कवियों के मत का ध्यान न रखते हुए अपने परिपक्व विचारों का कितने सुन्दर ढंग से प्रतिपादन किया है—

ब्रह्मतें पुरुष अरु प्रकृति प्रगट भई,
प्रकृति में महत्तत्व, पुनि अहंकार है।
अहंकार हूँ में तीन गुण, सत, रज, तम;
तम हू ते महा भूत, विषय पसार है ॥
रज हूँ ते इन्द्री दस पृथक् पृथक् भई,
सत्त हूँ ते मन आदि देवता विचार है।
ऐसे अनुक्रम करि शिष्य सूं कहत गुरु,
सुन्दर सकल यह मिथ्या भ्रम जार है।

(४) मलिक महोम्मद जायसी :—

प्रेम मार्गी सूफ़ी कवियों में जायसी का एक महत्व पूर्ण स्थान है। इनके जीवन और मृत्यु के सम्बन्ध में पूरा २ ज्ञान नहीं,

फिर भी अनुमान के आधार पर जो निर्णय किया गया है उसी को मान लेना उचित है। जायसी का जन्म १५४६ तथा निधन १५६८ में हुआ था। यह पैदा तो गाजीपुर में हुए थे, पर वह जायस (राय बरेली) में आकर रहने लगे। इसी लिये यह जायसी नाम से प्रसिद्ध हैं। वैसे इनका नाम महोम्मद, तथा मलिक इनकी उपाधि थी। इस प्रकार इनका पूरा नाम मलिक महोम्मद जायसी था। इनका वाम-कर्ण श्रवण शक्ति से शून्य तथा वाम-नेत्र दृष्टि से क्षीण था। यूं भी आकृति में यह बड़े कुरूप थे। एक बार शेरशाह इन्हें देख कर हंस पड़ा, इन्होंने बड़े ही सुन्दर व्यङ्ग में कहा—'मोहिं कहं हंसे सिकि को हरि हिं' (मुझ पर हंस रहे हो, या मेरे बनाने वाले भगवान पर) इनके गुरु का नाम सैय्यद मुहीउद्दीन था। अमेठी राजा के यहाँ इनका बड़ा आदर था। कहा जाता है कि इनके आशीर्वाद से ही अमेठी राजा के यहाँ एक पुत्र उत्पन्न हुआ। सारा जीवन इन्होंने अमेठी राजा के आश्रय में ही व्यतीत किया। यह बड़े ही भावुक तथा सहृदय व्यक्ति थे। विशेषतः इनके जीवन में दो घटनाएं ऐसी हुइ कि उन्होंने इन्हें विशेष कोमल बना दिया। कहा जाता है कि जायसी के ७ सन्तान थीं। अचानक छत के गिरने से सब की मृत्यु हो गई, इस से इनके हृदय पर और भी गहरा प्रभाव पड़ा। दूसरी घटना तो और भी अद्भुत है। कहा जाता है कि इनके गुरु का उपदेश था कि किसी अन्य को भोजन खिला कर फिर स्वयं खाना चाहिये। एक दिन यह खेत में बैठे हुए किसी व्यक्ति की प्रतीक्षा में थे कि उसे भोजन खिला कर स्वयं खायें। जब कोई न मिला, तब अचानक एक ओर से कोढ़ी पर

दृष्टियान हुआ। इन्होंने उसे साथ बैठा कर भोजन खाना आरंभ किया, अकस्मात् कुछ कोढ़ का मुवाद भोजन के कुछ भाग पर जा पड़ा। कोढ़ी के मना करने पर भी जायसी उसे खा गये। कोढ़ी इतने में अन्तर्धान हो गया। बहुत ढूंढने पर भी वह कोढ़ी फिर न मिल सका। जायसी ने समझ लिया कि वह कोढ़ी साक्षात् भगवान् थे। उक्त दोनों घटनाओं ने उसके जीवन के पहलू को बदल दिया। मृत्यु घटना भी विचित्र ही है। कहा जाता है कि मरने से पहले जायसी ने अमेठी राजा को बतला दिया था कि मेरी मृत्यु किसी व्याध के बाण से होगी। राजा ने जायसी के आस-पास मृगया खेलना बन्द कर दिया था। जायसी अनेक प्रकार की आकृति बना लेते थे। एक दिन उन्होंने उपहास में बाघ का रूप धारण किया हुआ था। एकान्त तो था ही; अकस्मात् एक व्याध आ पहुंचा। उसने बाघ समझ कर बाण छोड़ दिया, ज्यों ही बाघ को लेने बढ़ा तो देखा जायसी मरे पड़े हैं। तब व्याध को अपनी करनी पर बड़ी लज्जा आई।

जायसी की तीन पुस्तकें उपलब्ध होती हैं।

(१) पद्मावत, (२) अखरावट, (३) आखिरी कलाम

अखरावट में एक २ अक्षर को लेकर ब्रह्मतत्व का विवेचन है। आखिरी कलाम में, मुसलिम संस्कृति का लघुचित्र। इनकी अक्षय कीर्ति को जागृत रखने वाला महाकाव्य पद्मावत है जो कि १५७७ में लिखा गया है। पद्मावत में एक राजा की कहानी है। परन्तु सूफ़ी सिद्धान्तों का भी पग २ पर प्रदर्शन है। मुसलिम संस्कृति का भी स्थान २ पर आभास है। नागमती का वियोग-खण्ड, पद्मावत का प्राण है। लेखक हिंदू संस्कृति से पूर्ण परिचित नहीं जान पड़ता। यही कारण है कि वह नारद को शैतान और

चन्द्रमा को स्त्री और इन्द्र का स्थान कैलाश बतलाता है। भाषा ठेठ अवधि है। भावनाओं में प्रेम का बाहुल्य है। इस प्रकार सूफ़ी कवियों में जायसी का महत्व पूर्ण स्थान है।

(५ गोस्वामी तुलसीदासः—

कविता में जितनी विशेषताएं होनी चाहिए तथा एक सत कवि में जितने उत्कृष्ट गुण होने चाहियें, वह सब गोस्वामी तुलसीदास की कविता में तथा गोस्वामी तुलसीदास में पाये जाते हैं। आज तक जितना अधिक लिखा जा चुका है, वह उनके कवि गुणों की उत्कृष्टता के कारण ही है। जो भी कुछ लिखा गया है मैं समझता हूं कि उनकी यह लघु झाँकी है। यदि कहीं भारत के स्थान पर यह योरप में पैदा होते तो आलोचना-प्रत्यालोचनात्मक तुलसी पर एक नया साहित्य खड़ा हो जाता। पर खेद ऐसे महाकवि के जीवन वृत्त के सम्बन्ध में भी हम 'इद मित्थं' कुछ भी निश्चय न कर सके, और ना ही उन्होंने हमें अता पता बताया है। अतः अन्तः साक्षी बहिः साक्षी तथा किम्वदन्तियों के आधार पर जो सामग्री हमें उपलब्ध होती है, उसी का साधारण रूप से निरूपण होगा। उनके आप लिखे जीवन के भाग दो पुस्तकों में हमें मिलते हैं। कवितावलि का उत्तरकाण्ड तथा हनुमान बाहुक। बहिः साक्षियों में गुसाईं चरित्र तथा भक्तमाल की टीका। किम्वदन्तियाँ इधर-उधर अनेक बिखरी हुई हैं, उनके सम्बन्ध में कुछ उल्लेख नहीं किया जा सकता। इनका जन्म सम्वत् १५८६ या १५८६ बताया जाता है। किसी अशुभ नक्षत्र में पैदा होने के कारण इनको घर से निकाल कर दासी को सौंप दिया गया। मरती हुई दासी ने शिशु का भार अपनी सास पर दे दिया। उन

दोनों के नाम चुनिया और मुनिया बताये जाते हैं। सास की मृत्यु के पश्चात् ६ वर्ष का शिशु भिक्षुक वृत्ति से निर्वाह करने लगा। नाम करण तो इसका था ही नहीं, परन्तु बचपन में इसे भिक्षुक होने के कारण राम बोला कहते थे। जन्म स्थान राजा पुर तथा सोरो दोनों बतलाये जाते हैं। सोरो का प्रमाण सूकर खेत देते हैं। पिता का नाम आत्माराम था। परन्तु इसका कोई भी प्रमाण नहीं है। माता का नाम हुलसी, इसके लिये रहीम का दोहा प्रसिद्ध है:—

"सुरतिय, नरतिय, नागतिय, अस चाहत सब कोय।
गोद लिये हुलसी फिरे तुलसी सो सुत होय॥

इतस्ततः पर्यटन करते हुए इस अल्प-वयस्क शिशु को नरहरि गुरु ने उठा लिया। पर्याप्त समय तक अपने पास रख कर इसे शिक्षा दीक्षा दी। यह कुछ समय में ही प्रकाण्ड विद्वान् बन गये। तरुण अवस्था आने पर पुनः अपने घर पहुँचे। इनके विवाह सम्बन्ध में त न मत हैं। एक तो यह कि इनका विवाह हुआ ही नहीं था, (२) इनके तीन विवाह हुए थे, एक विवाह के दहेज में ६००० हजार रुपया आया था और उस स्त्री का नाम बुद्धिमती था। तीसरा मत है कि इनका एक ही विवाह हुआ। पर मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि इनका विवाह अवश्य हुआ था और पत्नी के वाक्यों से ही यह वैरागी बने थे। उस समय वह वाक्य भले ही गद्य में हो या पद्य में पर अब वह पद्य में माने गये हैं—

लाज न लागत आपको दौरे आयहु साथ।

धिक् धिक् ऐसे प्रेम को कहा कहूं मैं नाथ ॥
अस्थि चर्म्ममय देह मम तामें ऐसी प्रीत ।
होती जो श्री राम में होती न तो भव भीत ॥

उसकी इस पद्यात्मक रचना से लोग यह कल्पना करने लगे हैं कि रत्नावली कवयित्री भी थी, परन्तु अभी तक यह कथन विश्वसनीय नहीं है। तुलसी विरक्त हो कर तीर्थाटन के लिये निकल पड़े, और पर्याप्त समय तक इधर उधर घूमते रहे। जिस प्रकार कस्तूरी की सुगन्ध दिग्दिगन्तरों में प्रसरित हो जाती है, जिस प्रकार पुष्प का वास पार्श्ववर्ती व्यक्ति को सुवासित कर देता है, जिस प्रकार शीत रश्मि की सुधामय किरणें समस्त जनता के लिये नयनाभिराम बनती हैं, उसी प्रकार तुलसीदास की कृतियों से उद्बुद्ध होने वाली कीर्ति-चन्द्रिका दशों दिशाओं में फैल गई। जिस प्रकार चन्द्रिका चोर के चित्त को व्याकुल कर देती है, उसी प्रकार तत्कालीन विद्वानों को तुलसीदास की कीर्ति-ज्योत्स्ना अच्छी न लगी। इसी लिये पण्डितों द्वारा उन्हें विविध प्रकार के कष्ट मिलने लगे। इसका दुःखात्मक उल्लेख कवितावलि के उत्तर काण्ड में पाया जाता है। अन्त में राजनैतिक वातावरण से अशान्त हो कर तथा पण्डितों की धधकती हुई ईर्ष्याग्नि से दुखी हो कर सम्वत् १६८० में काल कवलित हो गये। निम्ननिर्दिष्ट दोहे से स्पष्ट है:—

"सम्वत् १६८० असी गंग के तीर ।
श्रावण श्यामा तीज, शनि तुलसी तज्यो शरीर ॥"

तीसरे पाद में पाठान्तर यह भी मिलता है:—

श्रावण शुक्ला सप्तमी

परन्तु मुझे पहिला प्रमाण ही संगत प्रतीत होता है। क्योंकि टोडरमल के वंशज अब भी तुलसीदास के नाम पर तृतीया को ही "सीधा" देते हैं।

तुलसी कृतियाँ:—

तुलसी के ग्रन्थों के सन्बन्ध में भिन्न २ मत भेद हैं। कई ३६, २०, १८, १४, १३, १२ पुस्तकें तक मानते हैं। परन्तु काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित तुलसी ग्रन्थावलि में १२ पुस्तकें दी हैं। इसलिये मेरे विचार में भी वह प्रामाणिक हैं—क्योंकि शेष पुस्तकों में अभी सन्देह पाया जाता है। वह १२ पुस्तकें निम्न निर्दिष्ट हैं:—

(१) रामलला नहछू
(२) वैराग्य संदीपनी
(३) बरवै रामायण
(४) पार्वती मंगल
(५) जानकी मंगल
(६) रामाज्ञा प्रश्न
(७) दोहावली
(८) कवितावली
(९) गीतावली
(१०) श्रीकृष्ण गीतावली
(११) विनय पत्रिका
(१२) रामचरित मानस

इन में पार्वती मंगल, श्रीकृष्ण गीतावली तथा वैराग्य संदीपनी

के अतिरिक्त सभी पुस्तकें रामगुण गान सम्बन्धी हैं। पर इनका अक्षय-कीर्ति-स्तम्भ रामचरित मानस ही है। मुझे विश्वास है कि जब तक भारतवर्ष में हिन्दूजाति का एक भी बच्चा रहेगा, तब तक रामचरित मानस का नाम अक्षुण्ण रहेगा। रामचरित मानस का धार्मिक दृष्टि-कोण से तो महत्व है ही, आधुनिक साहित्यकों ने यह भी सिद्ध कर दिया है कि उस का साहित्य सम्बन्धी मूल्य उससे भी द्विगुणतर है। प्रायः यह उक्ति प्रसिद्ध है कि कवि पूर्ववर्ती कवियों से लेकर परवर्ती कवियों को देता है, परन्तु तुलसी के सम्बन्ध में यह उक्ति लागू नहीं होती। इन्होंने उस समय में प्रचलित प्रत्येक शैली को अपनाया। भाटों की छप्पय्या पद्धति, सूफियों की दोहा चौपाई पद्धति, निर्गुण ज्ञानाश्रयियों की दोहा पद्धति, कृष्ण कवियों की गीति पद्धति तथा रीति कवियों की कवित्त सवैया पद्धति इस प्रकार पाँचों पद्धतियों का प्रभाव प्रदर्शन इनकी प्रत्येक पुस्तक में पृथक् पृथक् रूप में पाया जाता है। उस समय की प्रचलित व्रज तथा अवधि भाषा को संस्कृत की कोमलकान्त पदावली के साथ रख दोनों भाषाओं को चार चाँद लगा दिये। मुक्तक तथा प्रबन्ध दोनों प्रकार की कविता पर इनका पूरा प्रभुत्व था। रामचरितमानस के संवादों से यह लक्षित होता है कि यदि यह नाटक लिखते तो सफल नाटककार बनते। जैसे परशुराम लक्ष्मण सम्वाद, रावण अंगद सम्वाद इत्यादि। यही कारण है कि तुलसीदास अपने कवि गुणों में सूर से भी अधिक बढ़ गये हैं, इसलिये उपर्युक्त कथन कि जो कवि में विशेषता होनी चाहिये, वह तुलसीदास में अक्षरशः पाई जाती है। यह सत्य है।

[६] सूरदास

सूर सूर तुलसी ससी उड गन केसब दास ।

प्राचीन आलोचकों की यह उक्ति कि महात्मा सूरदास जी सूर्य के समान थे अन्यथा नहीं है। सूर में कुछ ऐसी अलौकिक प्रतिभा न थी अनुपम कवित्व-शक्ति थी, कि जिसके सामने सभी कविगण तुलसी के अतिरिक्त खद्योत के समान प्रतीत होते थे, पर ऐसे महात्मा के जीवन का पूरा ज्ञान नहीं है। जो कुछ पता भी चलता है, उस पर विद्वानों का मत-भेद है। सूरदास के जीवन पर प्रकाश डालने वाली पुस्तकें हैं, जो प्राय: अप्रामाणिक सी मानी जाती हैं। परन्तु गोस्वामी गोकुलनाथ चौरासी वैष्णवन की वार्ता पर ही विद्वानों का अधिक विश्वास है। अतः उस आधार पर तथा अन्य बिखरी हुई सामग्री के आधार पर सूर के जीवन का कुछ निष्कर्ष निकाला जा सकता है। सूर का जन्म सम्वत् १५४० में हुआ था। इनके पिता का नाम राम दास था। बहुतों का विचार है कि यह चन्द वरदाई के वंशज थे। यह जन्मान्ध थे, या बाद में अन्धे हुए थे, इसपर मत-भेद है।

कहा जाता है, इनके सातों भाई युद्ध करते मारे गये थे, तब यह उदास होकर इधर-उधर घूमनें लगे, तब इन्हें वल्लभाचार्य जी ने शिष्य बनाया। श्रीनाथ के मन्दिर पर यह गाया करते थे। श्रीनाथ के मन्दिर की स्थापना १५७६ में हुई थी। इनकी मृत्यु पारासोनी ग्राम में १६२० में हुई थी, इसका उल्लेख चौरासी वैष्णवन की वार्ता में पाया जाता है। कहा जाता है कि जब यह मरने लगे तब विट्ठलनाथ ने कहा था कि "पुष्टिमार्ग का जहाज

जा रहा है, किसी ने कुछ लेना हो तो ले लो" और सूरदास जी निम्न लिखित पद पढ़ते हुए गो लोक वासी हुए:—

खञ्जन नैन रूप रसमाते।

अति सै चारु चपल अनियाने पल पिंजरा न समाते।
चलि चलि जात निकट भवनन के उलट पुलट नाटंक फंदाते।
सूरदास अजतगुण अटके नातर अब उड़ जाते॥

सूर की कृतियाँ :—

सूरदास के सोलह ग्रन्थ बतलाये जाते हैं। परन्तु प्रसिद्ध तीन ही हैं। (१) सूर सागर, (२) सूर सारावली, (३) साहित्य लहरी।

परन्तु अमर कीर्ति स्तम्भ सूर सागर ही है। यह कहा जाता है कि इस ग्रन्थ में सवा लाख पद हैं। पर आठ दस हजार से अधिक नहीं मिलते। श्री भागवत् की भाँति सूर सागर के भी १२ स्कन्ध हैं। अधिक ध्यान दशम स्कन्ध पर ही दिया गया है। सूरदास की कोमल ब्रज भाषा है। इनकी कृष्ण भक्ति सख्यभाव की है। यों तो सूर ने न्यूनाधिक रूप से सभी रसों का वर्णन किया, पर वात्सल्य और श्रृंगार में तो इन्होंने खूब सिद्ध हस्तता दिखलाई। परिमित क्षेत्र होने पर भी सूर ने उसका कोणा २ झाँक मारा। अपनी अंधी आँखों से उन्होंने बाल्य काल का कितना हृदयङ्गम चित्र खींचा, यह पढ़ते ही बनता है। इसीलिये तो किसी ने कहा है कि "न च तत्व सूरा कही।" वात्सल्य ने सूर को तथा सूर ने वात्सल्य को मानों अपना ही लिया है। मेरा विश्वास है कि मुक्तक कवितायें विशेषतः वात्सल्य रस में सूर की तुलना का नहीं हिन्दी साहित्य में नाहीं और किसी

साहित्य में सिद्धहस्त कवि मिल सकता है। यही कारण था कि "पृष्ठ छाप" में आप सर्व प्रथम रहे।

मीरा बाई

मीरा का जन्म १५७३ मेड़निये के राठोर कुल में रत्नसिंह जी के घर हुआ था। कहा जाता है कि बचपन से ही इन्हें गिरिधर नागर की मूर्ति से प्रेम था। मूर्ति के सामने बैठ कर घण्टों उपासना किया करती थी। इनका विवाह उदयपुर के राणा कुमार भोजराज के साथ हुआ। अभी वैवाहिक स्वारस्य प्राप्त ही नहीं हुआ था, कि मीरा के पति का आकस्मिक देहावसान हो गया। उससे मीरा के हृदय पर कोई अधिक चोट नहीं पहुंची क्योंकि वह गिरधर गोपाल के रंग में रंगी हुई थी। कृष्ण की मूर्ति के सामने वह नाचती, गाती और कीर्तन करती। परन्तु मीरा की यह चेष्टा राज परिवार को बहुत बुरी लगती थी। यही कारण था कि मीरा को राज परिवार से अधिक यातनाएं सहनी पड़ीं जिनका उल्लेख निम्नलिखित पद में पाया जाता है:—

राम तने रंग राची राणा,
मैं तो साँवलिया रंग राची रे।

ताल पखावज मिरू रंग बाजा, साधो आगे नाची रे।
कोई कहे मीरा बावरी, कोई कहे मद माती रे।
विष का प्याला, राणा भेज्या, इमरित कर आयेगो री।
मीरा कहे प्रभु गिरधर नागर, जनम जनम की दासी रे।

कहा जाता है कि इन्हीं यातनाओं से पीड़ित हो कर मीरा ने तुलसी को एक पत्र भी लिखा था:—

स्वस्ति श्री तुलसी कुल भूषण दूषन हरन गोसाईं ।
बार ही बार प्रनाम करहुं, अब हरहु सोक समुदाई ।
साधु संग अरु भजन करत मोहि देत कलेस महाई ।
मेरे मात पिता के सम हो हरिभक्तन्ह सुखदाई ।
हमको कहा उचित करिबो है, सो लिखिये समझाई ।।

उत्तर में तुलसीदास जी ने लिखा :—

जाके प्रिय न राम वैदेही ।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम यद्यपि परम सनेही ।

विद्वान् इस पत्र व्यवहार को अप्रामाणिक मानते हैं। १६३० में मीरा का देहावसान हुआ। मीरा की चार कृतियाँ उपलब्ध होती हैं:—

(१) नरसी जी का मायरा, (२) गीत गोविन्द की टीका, (३) राग गोविन्द, (४) राग सोरठ के पद ।

मीरा की भाषा राजस्थानी थी। मीरा की कविता कृष्ण के अनन्य प्रेम से ओत-प्रोत है। इसने कृष्ण की प्रियतम भाव से उपासना की। यूं तो पहिले कबीर भी ईश्वर की प्रियतम भाव से उपासना कर चुके थे, पर उनकी कविता में पुरुष होने के कारण पुरुष गुण की प्रधानता रही, पर मीरा की कविता में स्त्री कवि होने के कारण सौ कुमार्य, माधुर्य तथा मार्यव की छटा छलित होती हुई सी दृष्टिगोचर होती है । मीरा उस पराकाष्ठा तक पहुंच चुकी थी, वहाँ उसकी कविता और वाणी मात्र में कोई अन्तर नहीं रह जाता। बहुत से विद्वान् अनहद, नाद, झंकार आदि अनेक पारिभाषिक शब्दों को मीरा की कविता में देख उस पर निर्गुणता का सन्देह करते हैं; परन्तु यह उनकी भूल

है। वह तल्लीन होकर आत्मा से उठे हुए शब्दों का अभिव्यञ्जन करती है, ना कि निर्गुण पारिभाषिक शब्दों का। इस लिये मीरा की कविता उस मोर मुकुट धारी कुञ्ज बिहारी कृष्ण पर ही आकर ठहरती है। अन्य किसी प्रकार का सन्देह करना, निर्मूल है।

रसखान

ब्रज भाषा, ब्रज भूमि तथा ब्रजराज के अद्वितीय भक्त महाकवि तथा भक्तवर रसखान का नाम कौन ऐसा अभागा साहित्यज्ञ होगा जो न जानता हो। यह दिल्ली के पठान सरदार थे। इनके सम्बन्ध में दो किम्वदन्तियाँ हैं। एक तो यह कि यह किसी लड़के से प्रेम करते थे और दूसरी यह कि इनकी आसक्ति किसी स्त्री पर थी। जो भी हो। इनका यह लौकिक प्रेम अलौकिक प्रेम की धारा में बह निकला। इनकी बनाई हुई दो पुस्तकें कही जाती हैं। (१) प्रेम वाटिका, (२) सुजान रसखान। प्रेम वाटिका में केवल दोहे ही हैं। सुजान रसखान में कवित्त, सवैय्ये। इनके सवैय्ये उस समय इतने प्रसिद्ध थे कि सवैय्यों का दूसरा पर्य्यायवाची नाम ही रसखान पड़ गया था। इस प्रकार इन्होंने कृष्ण महिमा, ब्रज महिमा, प्रेम महिमा, मुरली महिमा, आदि अनेक सुन्दर २ विषयों पर दोहे तथा कवित्त सवैय्ये लिखे। ऐसे प्रेम प्रधान तथा भावुक मुसलमानों को देख कर ही भारतेन्दु ने कहा था कि—

"इन मुसलमान हरिजनन पर कोटिन हिन्दु न वारिए"

निश्चय ही रस खान का हिन्दी साहित्य में ऊंचा स्थान है।

रहीम

रहीम का नाम अब्दुल रहीम खानखाना था। यह अकबर के सुप्रसिद्ध सेनापति बैरमखाँ के लड़के थे। बचपन से ही रहीम की रुचि साहित्य की ओर थी। जहाँगीर के समय तक यह रहे। कहा जाता है कि एक समय क्रुद्ध ह कर जहाँगीर ने इनकी सारी सम्पत्ति छीन ली थी, अतः यह निर्धन हो गये थे, इस प्रकार इन्होंने अपने जीवन में सभी प्रकार की अवस्थाओं को पार किया। यही कारण है कि इनके नीति सम्बन्धी दोहो में कठोर सत्य पाया जाता है। यह बड़े दानी थे। उन दिनों में इन के दान का डंका दिग्दिगन्तरों में बजता था। कहा जाता है कि एक याचक इनसे दान लेने के लिये गया जब कि इनकी अवस्था शोचनीय थी। तब इन्हों ने दुःख से यह दोहा पढ़ाः—

तब लग ही जीवो भलो, दीवो घरे न धीम विन।

कहा जाता है कि एक गरीब ब्राह्मण तुलसीदास से अपनी लड़की के विवाह के लिये कुछ धन माँगने आया। तुलसीदास जी ने निम्ननिर्दिस्ट दोहा खण्ड लिख कर रहीम के पास उस ब्राह्मण को भेज दियाः—

सुरतिय, नरतिय, नागतिय अस चाहत सब कोय।

रहीम ने ब्राह्मण को पर्याप्त धन देकर सन्तुष्ट किया तथा दोहे का उत्तरार्ध यों पूरा कर तुलसी दास के पास भेज दियाः–

गोद लिये हुलसी फिरे, तुलसी सो सुत होय।

कहा जाता है कि एक सैनिक कुछ दिनों का अवकाश लेकर

अपनी नवोढ़ा पत्नी को मिलने गया। सैनिक ने अवकाश से अधिक समय वहाँ व्यतीत कर दिया। जब पत्नी से विदा हुआ तो उसने उसे निम्न प्रदर्शित छन्द लिख कर दिया। रहीम ने वह छन्द पढ़ा। उसपर एक पुस्तक लिख दी जिसका नाम वरवैतायिका भेद है। कहा जाता है कि तुलसी का वरवै रामायण भी रहीम के अनुरोध से लिखा गया है।

सैनिक पत्नी का छन्द यह था:—

प्रेम-प्रीत के बिरवा चले लगाइ।
सींचन की सुधि लीजो मुरझि न जाई।

रहीमजी जितने दानी थे, उतने नम्र भी थे। इन्होंने गङ्गकवि को एक छंद पर ३६ लाख रुपया दिया। तब गङ्ग ने कहा:—

सीसे कहा नवाब जू ऐसी देनी देन।
ज्यों ज्यों कर ऊंचे करे, त्यों त्यों नीचे नैन॥

रहीम ने उत्तर दिया:—

देन हार कछु और है भेजत है दिन रैन।
लोग भरम मोपै, करे ऐने नीच नैन॥

१६८३ में उनका देहावसान हुआ। रहीम का ब्रज, अवधी, संस्कृत, अरबी, फारसी सब पर एक सा अधिकार था। उनकी ५ कृतियाँ प्रसिद्ध हैं:—

(१) रहीम दोहावली
(२) बर नैनायिका भेद
(३) शृंङ्गार सोरठ
(४) अदनाष्टकम्
(५) रास पजवाध्यामी

केशवदास

केशवदास का जन्म १६१२ में टेहरी नामक स्थान में गुणास्व वंश में हुआ था। इनके पूर्वज संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान थे। इनके पिता काशीनाथजी ने ज्योतिष में शीघ्रबोध नामक पुस्तक लिखी थी। ओरछा नरेश इन्द्रजीतसिंह केशव को गुरु की भाँति मानते थे और उन्हें २१ ग्राम भी दिये थे। निम्न दो कविताएं दी जारही हैं। पहिले में केशव का वंश वर्णन है तथा दूसरे में २१ ग्राम के देने का प्रमाण है:—

प्रथम कविता:—

सनाढ्य जाति सुनाढ्य है जगसिद्ध शुद्ध स्वभाव।
कृष्णदत्त प्रसिद्ध है महि मिश्र पण्डित राव॥
गणेश सो सुत पाइयो, बुध काशीनाथ अगाध।
अशेष शास्त्र विचारिकै, जिन पाइयो मत साध॥
उपज्यो तेहि कुल मन्द मति शठ कवि केशवदास।
रामचन्द्र की चन्द्रिका भाषा करि प्रकास॥

द्वितीय कविता

गुरुकर मान्यो इन्द्रजित तन मन कृपा विचारि।
ग्राम दिये इक्कीस तब, ताके पाँय पखारि॥

कहा जाता है कि इन्द्रजीत का एक करोड़ का दण्ड अकबर से केशव ने ही क्षमा कराया था। बीरवल से केशव का विशेष प्रेम था। केशव को एक कविता पर ६ लाख रुपया पारितोषिक

रूप से बीरवल ने दिया था। केशव बहुत ही शृंगारिक थे। इसलिये उन्होंने अपने बुढ़ापे पर दुःखद कविताएं लिखी हैं। इनका यह शृंगारिक दोहा तो प्रसिद्ध ही है:—

केशव केशन अस करि, अति हू जस न कराहिं।
चन्द्रवदनि मृग-लोचनी बाबा कहि कहि जाहिं ॥

केशव की तुलसी से भी भेंट हुई थी। पर रामचन्द्रिका की लिखने की प्रेरणा उन्हें बाल्मीकि से स्वप्न में हुई ऐसा कहते हैं:—

बाल्मीकि मुनि स्वप्न में दीन्हो दरसन चारु।
केशव तिनसो यों कह्यो क्यों पाऊं सुख सारु ॥

बाल्मीकि ने इसका उत्तर दिया:—

भलो बुरो न तू गनै, वृथा कथा कहै सुनै।
न राम देव गाइ है, न देव लोक पाइ है ॥

अन्त में केशव की मृत्यु १६७४ में हुई थी। केशव की भाषा में बुन्देलखण्ड के शब्द अधिकाँश में पाये जाते हैं। केशव की सात कृतियाँ विशेष प्रसिद्ध हैं:—

(१) विज्ञान गीता, (२) रतन बावनी (३) जहाँगीर जस चन्द्रिका (४) वीरसिंह देवचरित्र, (५) रसिक प्रिया (६) कवि प्रिया (७) रामचन्द्रिका।

इनमें से इनकी अधिक प्रसिद्ध कृति रामचन्द्रिका ही है। कवि प्रिया इन्होंने अपनी शिष्या प्रवीन राम वेश्या के लिये लिखी थी। और उसकी प्रशंसा में इन्होंने उसे शारदा तक कह डाला है। केशव की कविता के सम्बन्ध में दो बातें स्मरणीय हैं। (१) कथोप कथन, राजसी ठाठ-बाठ तथा राजनैतिक दाव-पेचों में

केशव सिद्धहस्त हैं। (२) कथानक में, प्रसङ्ग निर्वाह में, चरित्र-चित्रण में केशव बुरी तरह असफल हुए हैं। पहिली बात में विशेषता, उनके राजसी प्रभुत्व के कारण आई और दूसरी बात की न्यूनता उनकी अलङ्कार क्रीड़ा, तथा आशा काठिन्य के कारण आई।

केशव के सम्बन्ध में यह दोहा प्रसिद्ध है:—

कविको दीनन चहे विदाई।
पूछे केशव की कविताई॥

यही कारण है कि केशव कविता के प्रेत कहे जाते हैं। कशव के अपने साहित्यिक दोषों के कारग ही हिन्दी साहित्य गगन में उनका स्थान उडुगण रहगया, नहीं तो केशव ने तत्कालीन सभी पद्धतियों को अपनाया। उनका अभिमान ही उन्हें ले डूबा।

भूषण

जब हिन्दू जाति मुसलमानों से सम्पत्ति लेकर अपना स्वत्व खो बैठी तथा शान्ति से अपना जीवन व्यतीत करने लगी। अत्याचारों को भी वह प्रेम से सह लेती परन्तु आत्म गौरव का नाम ही हृदय से मिटचुका था। चारों ओर सुवासित तेल की सुगन्धि आने लगी. प्रोषित भृतकाएं, बारहमा से गा कर पपीहे को उपालम्भ देने लगी। वासिक सज्जाएं सज्जा सुसज्जित बन कर प्रियतम की प्रतीक्षा में षड्भयतुका गायन में वर्णन करती थी, अभिसारिकाएं नख- शिख शृंगार किये, प्रियतम का अभिसरण करती थीं। इन सब का वर्णन करते थे हमारी

जाति में जागृति पैदा करने वाले कविजन। जब राजा और प्रजा सब विलासिता के मद मत्त प्रवाह में प्रवाहित हो रहे थे, तभी राष्ट्रीयता का शंखनाद करने वाले और उस नाद से समय से विलासिता में सोई हुई जाति में नव चेतना लाने वाले महा कवि भूषण को कौन साहित्यज्ञ न जानता होगा। यह त्रिपाठी बन्धुओं के तीसरे भाई थे। इनके नाम का अभी तक पता नहीं। बहुत से विद्वानों का अनुमान है कि इनका नाम पतिराम था, पर जो भी हो सोलङ्की नरेश के उपाधि देने पर अब इनका नाम कवि भूषण ही पड़ गया है। भूषण का जन्म १६७० और निधन १७७२ में हुआ।

इतनी दीर्घायु में इन्हों ने अनेक राजाओं का आश्रय ग्रहण किया, पर जो सुख शान्ति, इन्हें बुन्देलखण्ड के राजा छत्रसाल, तथा मराहटाधिपति शिवाजी से हुई, वह अन्यत्र न हुई। इन्होंने उनका वर्णन भी भरपेट किया और धन भी भरपेट पाया। भूषण राष्ट्रीय कवि थे, पर उनकी यह राष्ट्रीयता आज जैसी व्यापक राष्ट्रीयता नहीं थी। वीर रस का तो उन्होंने वर्णन किया ही है पर अपने काल के अनुकूल श्रृंगार में भी सरस कविताएं कीं। कविता में तीव्रता, तथा ओजगुण लाने के लिये इन्होंने शब्दों को विलक्षण रूप से तोड़ा मरोड़ा है।

इनकी ३ पुस्तकें इस समय उपलब्ध होती हैं:—

[१] शिवा बावनी [२] शिवराज भूषण [३] छत्रशाल दशक।

तीन पुस्तकें इनकी और बतलाई जाती हैं। [१] भूषण हजारा [२] भूषणोल्लास [३] दूषणोल्लास। मुझे विश्वास है कि भूषण ने इस दीर्घायु में बहुत कुछ लिखा होगा, परन्तु वह उपलब्ध नहीं होता।

बिहारीलाल

एक आलोचक ने लिखा है कि किसी कवि की ख्याति ग्रन्थों की संख्या से नहीं, प्रत्युत कवि गुणों की अधिकता से होती है। यह उक्ति बिहारीलाल पर अक्षरशः घटती है। बिहारी का जन्म १६६० में बसुवा गोविन्दपुर में हुआ था। इनकी तरुणाई ससुराल में बीती। यह माथुर चौबे ब्राह्मण थे। अपने विषय में स्वयं लिखते हैं:—

जन्म ग्वालियर जानिये, खण्ड बुन्देले बाल।
तरुणाई आई युवा, मथुरा बसि ससुराल॥

एक बार यह महाराजा जयपुर नरेश जयसिंह के पास चले गये। उन दिनों में जयसिंह का नया विवाह हुआ था। नवोढ़ा-पत्नी में महाराज इतने अनुरक्त थे कि राज-काज का संभालना तो क्या अन्तःपुर से बाहिर झाँकने तक का समय न मिलता था। मन्त्रियों की सम्मति से बिहारी ने उनके पास कथा कथञ्चित् एक दोहा लिख कर भेजा।

"नहिं पराग नहिं मधुरमधु नहिं विकास इह काल।
अली कली में ही फंस्यो आगे कौन हवाल॥

महाराज जयसिंह बाहर निकले और प्रसन्न हो कर उन्हें ऐसे ही सरल दोहे लिखने के लिये कहा। एक २ दोहे पर एक २ अशर्फी देने की प्रतिज्ञा की। इस प्रकार बिहारीलाल की एक ही बिहारी सतसई पुस्तक उनकी अखण्ड कीर्ति की परिचायक है। यद्यपि बिहारीलाल ने रीति ग्रन्थकारों की भांति कोई लक्षणग्रन्थ नहीं लिखा, तथापि उनकी यह सतसई ही एक ऐसी पिटारी है जिसमें सब अलंकार भाव, हावादि, भलीभाँति स्थान पालेते हैं।

शृङ्गार के साथ २ बिहारी ने भक्ति तथा नीति के सम्बन्ध में भी दोहे लिखे है। हाँ कहीं २ उनके वियोग शृङ्गार के अत्युक्ति पूर्ण दोहे हास्यास्पद भी बन गये हैं। उदाहरणार्थ एक दोहाः—

इत आवत चलिजात उत, चली छः सा तव हाथ ।
चढ़ी हिंड़ोरे सी रहै, लगी उसासन साथ ॥

इनकी सतसई के सम्बन्ध में यह दोहा प्रसिद्ध है।

सन सैया के दोहरे जो नायक के तीर ।
देखन में छोटे लगे घाव करे गम्भीर ॥

रीति काल में रीति ग्रन्थ न लिखने पर भी बिहारी का नाम अंतूषण है; क्योंकि यह बहुत थे। इनकी मृत्यु १७२० में हुई थी।

वृन्द [१६१०—१६८३]

यह ओरंगजेब के दरबारी कवि थे। औरंगजेब के पौत्र अजीमुश्शान के साथ बंगाल, बिहार और उड़ीसा तक गये। ढाके में इन्होने अपनी दृष्टान्त सतसई अर्थात् वृन्द विनोद सतसई १७६१ में लिखी। यूं तो इनकी दो पुस्तकें भाव पत्र-वाशिका और शृङ्गार शिक्षा भी प्रसिद्ध हैं, पर जो ख्याति इन्होंने उक्त प्रथम पुस्तक से प्राप्त की वह अन्य पुस्तकों से नहीं। सतसई की रचना के सम्बन्ध में इन्होंने स्वयं लिखा है :—

"समय सारि दो हानि को, सुनत होय मनमोद ।
प्रगट भई, वह सत सई, भाषा वृन्द विनोद ॥
अति उदार रिझवार जग, शाह अजीमुश्शान ।
सत सैया सुनि वृन्द की, कीनो अति सनमान ॥

संवत् ससिरसवार, ससि कार्ति सुदि ससिवार।
याते ढ़ाका सहर में, उपज्यो यह विचार॥

कृष्ण गढ़ महाराज राजसिंह वृन्द से बहुत प्रेम करते थे। वह इन्हें गुरुवत् मानते थे। वृन्द के वंशज अब भी कृष्ण गढ़ में रहते हैं।

वृन्द के जन्म तथा मृत्यु का ठीक निर्णय नहीं हो सका। लगभग १७४२ का ही अनुमान किया जाता है। वृन्द के दोहे बहुत ही सरल और शीघ्र कण्ठस्थ हो जाने वाले हैं। इन पर संस्कृत कविता की छाप गहराई से मिलती है। इनके दोहे बड़े ही शिक्षा-प्रद हैं।

आलम

कविवर आलम का जन्म १७१२ में सनाढ्य वंश में हुआ। यह औरंगजेब के पुत्र शाह मुअज्जम के समय के थे। इनके पहिले नाम का कुछ पता नहीं, जब यह मुसलमान हुए तब इनका नाम आलम रक्खा गया। इनके मुसलमान होने की घटना भी विचित्र सी है। कहा जाता है कि शेष नामक रंगरेजन को इन्होंने पगड़ी रंगने को दी। पगड़ी के एक कोने में दोहे का पूर्वार्द्ध लिखा हुआ रह गया:—

कनक छरी सी कामिनी, काहे को कटि छीन।

शेष भी एक विदुषी कवयित्री थी। उसने पगड़ी रंगदी और दोहा इस प्रकार पूरा करके पगड़ी में बांध दिया:—

कटि को कंचल काढि विधि कुचल मध्य धरि दीन

पूरित दोहे का उत्तरार्ध आलम पर जादू का काम कर गया। निदान स्वरूप इन्हों ने शेष का पानी ग्रहण किया और स्वयं मुसलमान हो गये। आलम तथा शेष की मिली जुली कविताएं संग्रहों में पाई जाती हैं। कहा जाता है कि शेष भी बड़ी प्रत्युत्पन्न-मति थी। एक बार शाह मुअज्जम ने उपहास करते हुए शेष से कहा क्या आलम (संसार) की पत्नी आप ही हैं। उत्तर में शेष ने कहा जहाँपनाह जहान (पुत्र का नाम) अर्थात् संसार की माँ मैं ही हूं। इनका संग्रह आलम केलि नाम का बड़ा प्रसिद्ध है। इनकी कविता में प्रेम की प्रधानता तथा आनन्द की अधिकता है। जो शक्ति पाठक को कविता के प्रवाह में बहा देने वाली घनानन्द, तथा रसखान में पाई ज़ाती है वही शक्ति आलम में भी उपलब्ध होती है।

गिरधर कवि राय। (१७७०—१८३०)

गिरधर कुण्डलियों के हिन्दी साहित्य में बहुत प्रसिद्ध हो गये हैं। कविराय पद से यह भाट जान पड़ते हैं। इनका जन्म १७७० के लगभग माना जाता है। यह मुलतान के किसी आस-पास प्रदेश में रहने वाले थे। कहा जाता है कि इनकी एक बढ़ई से अनबन हो गई थी। उस बढ़ई का राजा के यहाँ बड़ा मान था। एक बार बढ़ई ने राजा को पलंग बना कर दिया पलंग सुन्दर था। राजा ने फिर उसी प्रकार का दूसरा पलंग बनाने के लिये कहा। बढ़ई को गिरधर कविराय को अपमानित करने की सूझी। राजा से कहा कि यदि गिरधर कविराय के घर की बेरी की लकड़ी मिल जाय तो वैसा पलंग तैयार हो सकता है। गिर-

धर के अनुनय-विनय करने पर भी राजा ने वृक्ष कटवा ही डाला। गिरधर ने सतिआने म्लाने मरण अथवा दूर सरण इस उक्ति को अपनाते हुए अपनी पत्नी सहित बाहिर जाने की ठान ली। पत्नी सहित मार्ग में घूमते हुए हिंदी साहित्य की रत्नमयी कुण्ड-लियाँ लिखीं। कहा जाता है कि इनकी पत्नी भी बड़ी कवयित्री थी। इनकी और उनकी पत्नी की कुण्डलियाँ दूध मिश्री की भाँति मिल गई है। माई नाम से सम्बोधित की हुई कुण्लियाँ इनकी पत्नी की लिखी हुई हैं। इनकी कुण्डलियों का विषय राज-नीति, समाज हित तथा धर्म्म आदि। यद्यपि इन्होंने व्याकरण में ध्यान विशेष रूप से नहीं दिया तथापि कुण्डलियों का स्थान इनके अनूठे कथन के कारण बड़ा ऊंचा है।

दीनदयाल गिरी

रीति काल के अन्तिम ज्योत्स्ना स्वरूप तथा आधुनिक काल के अरुण बाबा दीनदयाल गिरी को कौन साहित्य मर्मज्ञन जानता होगा। शैव होते हुए भी आप का हृदय साम्प्रदायिकता की सीमा में बद्ध न था! आपका जन्म १८५६ में हुआ। शैकाव में ही माता पिता के देहावसान से यह महन्त कुशागिरी के शिष्य बन गये थे। इह लोक लीला समाप्त करने के पश्चात् महन्त-गिरी अपने शिष्यों पर पर्याप्त ऋणछोड़ गये थे। इनका यह ऋणही शिष्यों में पारस्परिक वैभतस्य का कारण बना। बाबा दीनदयाल गिरी, गद्दी छोड़ कर दूर हो गये थे। अमेठी के राजा बाबाजी को अपने पास रखना चाहते थे, पर नियमित हो कर रहना बाबाजी ने नहीं चाहा। भारतेन्दु के पिता गोपाल चन्द्र

(गिरधरदास) जी से आपकी घनिष्ठ मित्रता थी। उन्हीं के अनुरोध में यह कविता में प्रवृत्त हुए थे। रीति कालीन होते हुए भी बाबाजी ने उस काल के कवियों की भांति अन्धांनुसरण नहीं किया। इनकी अत्योक्तियाँ, सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक तथा अनुभव पूर्ण होती हैं। संन्यासी होते हुए भी इन्हें संसार का पूरा अनुभव था। अनुराग बाग में इन्होंने कृष्णके प्रति पूरा प्रेम दर्शाया है। इनकी मंजी हुई ब्रज भाषा है, तथा वाक्यों में कहीं कहीं भव्य स्थिरता है। इनकी कृतियाँ यह हैः—

दृष्टान्ततरंगिणी, धनुराग बाग, वैराग्य दिनेश, अन्तोक्तिमाला, और अत्योक्ति फल्यद्रुप। इनकी अत्योक्ति माला साहित्य मूल्य से उपादेय है। आपका देहावसान १६१५ में हुआ।

महाकवि चन्द बरदाई

पद्मावती विवाह कथा सेः—

पूरब दिस गढ़ गढ़न पति, समुद सिखर अति द्रुग्ग।
तहं सु विजय सुर राजपति, जादू कुलह अभग्ग ॥१॥
हसम हयग्गय देस अति, पति सायर भ्रज्ञाद।
प्रबल भूप सेवहिं सकल, धुनि निसाँन बहुसाद ॥२॥
पदम सेन कूंवर सुघर, ता घर नारि सुजान।
ता उर इक पुत्री प्रकट, मनहुं कला ससि भान ॥३॥
मनु काम कामिनि रचिय, रचिय रूप की रास।
पशु पंछी सब मोहिनी, सुर नर मुनि पर पास ॥४॥
सामुद्रिक लच्छन सकल, चौसठि कला सुजान।

जानि चतुर दस अंग षट, रति वसंत परमान ॥५॥
सखियन संग खेलत, फिरत, महलनि बाग निवास ।
कीर इक्क दिष्षय नयन, तब मन भयो हुलास ॥६॥
तिही महल रष्षन भईय, गई खेल सब भुल्ल ।
चित्त चहुं हयो कीर सों, राम पढ़ावत फुल्ल ॥७॥
कीर कुंवरि तन निरखि दिखि, नख सिखलौं यह रूप ।
करता करी बनाय कै, यह पदमिनी सरूप ॥८॥
सुक समीप मन कुंवरि को, लग्यौ वचन के हेत ।
अति विचित्र परिडत सुआ, कथत जु कथा अमेत ॥९॥
कामदेव अवतार हुआ, सु अ सोमेसर नन्द ।
सहस किरन झल हल कमल, रिति समीप वर विंद ॥१०॥
सुनत श्रवन प्रथिराज जस, उमग बाल विधि अंग ।
तन मन चित चहुं वान पर, वस्यौ सुरत्तह रंग ॥११॥
वेस विती ससिता सकल, आगम कियो वसंत ।
मात पिता चिन्ता भई, सोधि जुगति को कंत ॥१२॥
सवालष्ष उतर समल, कमऊं गढ़ दूरंग ।
राजत राज कुमोदमनि, हय गय डिब्ब अभंग ॥१३॥
नार केलि फल परठि दुज, चौंक पूरी मनि मुत्ति ।
दई जु कन्या वचन वर, अति आनन्द कर जुत्ति ॥१४॥
आनो तुम्हे चहुवान वर, अरु कहि इहै संदेस ।
साँस सरीरहि जो रहे, प्रिय प्रथिराज नरेस ॥१५॥
ज्यों रुकमनि, कन्हर वरी, ज्यों वरि संभरि कान्त ।
शिव मण्डप पच्छिम दिसा, पूजि समय स प्रान्त ॥१६॥
लै पत्री सुक यों चल्यौ, उडयौ गगनि गहि वाव ।

जहं दिल्ली प्रथिराज नर, अट्ठजाँम में जाव ॥१७॥
दिय क़ग्गर नृप राज कर, षुलि वंचिय प्रथिराज।
सुक देखत मन में हंसे, कियो चलन को साज ॥१८॥
जा दिन सिषर बरात गय, ता दिन गय प्रथिराज।
ता ही दिन पति साहकौं, भइ गज्जनै आवाज ॥१९॥
परै रहत रिन खेत अरि, करि दिल्लिय मुख रुक्ख।
जीति चल्यौ पृथिराज रिन, सकल सूर भय सुक्ख ॥२०॥
पदमावति इम लै चल्यो हरखि राज प्रथिराज।
एतें परि पति साह की, भइ जू आनि अवाज ॥२१॥
हुरे उरंग नव रंतवर, भयौ जुद्ध अति चित्त।
निसि वासुर समुझिन परत, न को हार नह जित्त ॥२२॥

कवित्त

न को हार नह जित्त, रहेइ न रहहि सूरवर।
घर उप्पर भर परत, करत अति जुद्ध महा भर ॥
कहाँ कमघ कहौं मध्य, कहीं कर चरन अन्नसरि।
कही कंध नहिं तेग, कहौं सिर जुट्ठि फुट्ठि उर ॥
कहौं दन्त मन्त हय खुर षुपरि कुंभ भ्रसुंडह रुंड सब।
हिंदवान रान भय भानु मुख, गहिय तेग चहुयाँन तब ॥

भुजंग प्रयात

कही गही तेग चहुंवान, हिंदवानएनं, गज जूथ परि कोप के हरि समानम्। करे रुंड मुंड करी कुंभ कारे बरंसूर सामन्त हुकि गर्ज भारे करी चीह चिक्कार करि कलव भग्गे, मदंत जियं लाज ऊमंग मग्गे

दौरि गज अंध चहुवांन केरो, घेरीयं गिरद चिहौ चक्क फेरो।
गिरद उडि भाँन अंधार रैनं, गई सूधि सुज्झै नहीं मज्झि मैनं।
सिरंनाव कम्पान प्रुथिराजराजं, पकरियै साहिजिम कुलिंगबाजं।
लै चल्यो सितावी, करी फारि फौजं,परे मीर सै पंच नहं खेतचौजं
रजं युत्त पच्चास भुज्झै अमोरं बजे जीत के नद्द नीसान घोरं

(दूहा)

जीति भई प्रथिराज की पकरि साह लै संग।
दिल्ली दिसिमागि लगौ, उनरि घाट गिर गंग॥
बद गौरी पद्मावती गहि गौरी सुर तांन।
निकट नगर दिल्ली गये प्रथीराज चहुआंन॥

कवित्त

बोलि विप्र सोधे लगन्न, शुभ घरी परिट्टय।
हर बांसह मंडप बनाय, करि भाँवरि गंठिय॥
ब्रह्मवेद उच्चरहिं होम चौरी जु प्रत्तिवर।
पद्मावती दुलहिन अनूप दुल्लह प्रथिराज राज नर॥
डंड्यौ साह साहाबदी अट्ठ सहस हयवर सुवर।
दौ दाँन माँन षट भेषको चढ़े राज द्रुग्गा हुजर॥
चढ़िय राज प्रथिराज, छाँडि साहाबदीन सुर।
निपत सूर सामंत, बजत निसान गजत धुर॥
चन्द्रवदनि मृगनयनि, कलस ले सिर सनमुख जुख।
कनक थार अति बनाय मोतिन बंधाय सुख॥
मण्डल मयंक नरनार सब, आनन्द कंठह गाइयव।
ढोरत चंवर किङ्कर करहिं, मुकुट सीस तिक जु दियव॥

दूहा

चढ़ै राज द्रुग्गह त्रिपति, सुमत राज प्रथिराज।
अति अनन्द आनन्द सैं, हिंदवान सिरताज ॥

महा चन्दवरदाई की कविता कठिन शब्दों का अर्थः—

समुद सिखर=समुद्र शिखर गढ़ । विजय=विजय पाल । जादू कुलह=यादव कुल=यदुवंशी। कूंवर=कुमारी। ससिभान [सं० शशिभानु] चन्द्रमा । चहुंदयो=लगगया। राँम पढ़ावत-फुल्ल=बड़े हर्ष से उसे राम का नाम पढ़ाने लगी । सुश्र=सुत पुत्र। रितिसमीप वर विंद=रति के समीप मानों कामदेव शोभा दे रहा है। सुरत्तह=प्रेम। ससिता=[संस्कृत शिशुता] किशोरावस्था। आगम कियो वसन्त=युवावस्था आरम्भ हुई । द्रिव्वा=सम्प्रति ।नारिकेलि=नारियल। परठि=देखकर । मुत्ति=मोती। जुत्ति=युक्ति। भइ गज्जनै अवाज=गज़नी में खबर मिली। कमध=कवंध=धड़ । अन्तरूरी अंतड़ियाँ। कलप=कलाप=समूह। मदं तजिय लाज ऊमंग मग्गे=मद, लाज और उमंग को छोड़ कर (हाथी) भाग रहे हैं । कुलिङ्ग=एक पत्ती, मुर्गा। सिताबी=शीघ्र। सै पंच=पाँच सौ। चौत्रं=चारों ओर। अमोरं=न मुड़ने वाले।परित्तय=परीक्षा करके।हस वाँसह=हरे बांसका। चौरी=विवाह मंडप। षट् भेष=राज स्थान में यति, जोगी, संयासी, जंगम, चारण, और ब्राह्मण षट भेष कहलाते हैं। (षट् भेष=षट् दर्शन)

सत्य कबीर (१४५६—१५७५)

सुमिरन को अंग

गुरुपारस पुरु परस है, गुरु चन्दन सुख बास ।
सत गुरु पारस जीव का, (जिन) दीया मुक्ति निवास ॥
गुरु पारस को अन्तरो, जानत हैं सब सन्त ।
वह लोहा कंचन करै, ये करि लेइ महन्त ॥
गुरु समान दाता नहीं, जाचक शिष्य समान ।
तीन लोक की सम्पदा, सो गुरु दीन्हीं दान ॥
पहिले दाता शिष्य भया, तन मन अरपा सीस ।
पीछे दाता गुरु भये, नाम किया बख-सीस ॥
तन मन दिया तो क्या हुआ, निज मन दिया न जाय ।
कहे कबीर ता दास सों, कैसे मन मतिमाय ॥
निज मन तो नीचा किया, चरन कमल की ठौर ।
कहे कबीर गुरु देव बिन, नजर न आवै और ॥
मन गन नाको दीजिये, जाकै विषया नाहिं ।
आपा सबहि डारिकै, राखै साहिब माँहिं ॥

विरह को अंग

विरह भुवंग हि तन डसा, मंत्र ही लागे कोय ।
विरह वियोगी क्यों जियै, जियै तो बौरा होय ॥
यातन का दीवल करो, वाती मेलो जीव ।
लोही सींचूं तेल ज्यों, कब मुख देखूं पीव ॥
विरहा विरहा मन कहो, विरह अहै सुलतान ।

जा घट विरहन संचरै, सो घट जान मसान ॥
भली भई जो पिब मुआ, नित उठ करता वार।
छूटी गल की फाँसरी, सोऊं पाँव पसार ॥
विरहा सेती मति अड़े, रे मन मोर सुजान।
हाड़ माँस रग खान है, जीवत करै मसान।
अविनासी की सेज पर, केलि करै आनन्द ॥
कहै कबीर वा सेज पर, बिलसन परमानन्द ॥

चितावनी को अंग

एक दिन ऐसा होयगा, सब से परे बिछोय।
राजा, राना, राव, रंक, सावध क्यों नहिं होय ॥
पाँच तत्व का पूतला, मानुष धरिया नाम।
दिना चार के कारनै, फिरि फिरि रोकै ठाँम ॥
पाकी खेती देखिकै, गरबै कहा किसान।
अजहूं झोला बहुत है, घर आवै तब जानि ॥
कबिरा वा दिन याद कर, पग ऊपरि नत सीस।
मृतु मण्डल में आयके, बिसरि गया जगदीस ॥
यह तन काँचा कुम्भ है, लिया फिरै था साथ।
ठप क्या लाग्या फुटि गया, कछू न आया हाथ ॥
कबिरा केवल राम की, तू मति छोड़ै ओट।
घन अहर न विच लोह ज्यों, घनी सहै सिर चोट ॥
कबिरा चित्त चमकिया, किया पयाना दूरि।
कायथ कागद काढ़िया, दरगह लेखा पूरि ॥

शेषनाग के सहस्त्र फन, फन फन जिह्वा दोय ।
नरके एकै जीभ है, ताही में रह सोय ॥

मन का अंग

मन के मते न चालिये, मनका मता अनेक ।
जो मन पर असवार है, ते साधु कोइ एक ॥
मन तो यह मिरगा भया, खेत विराना खाय ।
सूला करि करि सेकसी, धनी पहूँचे आय ॥
मन मोटा, मन दूबला, मन पानी मनलाय ।
मन को जैसी ही ऊपजै, तैसी ही ह्वै जाय ॥
मन दाता मन लालची, मन राजा मन रंक ।
जो यह मन हरि सों मिलै, तो हरि-भी मिलै निःशंक ॥
मन के बहुते रंग हैं, छिन छिन मध्ये होय ।
एक रंगे जो रहे, ऐसा विरला कोय ॥
मन पाँचों के बसियरा, मन के बसि नहिं पाँच ।
जित देखों तित दौ लगी, जित भागा तित आँच ॥
मनुआ तो पंछी भया, उडिकै चढ़ा अकास ।
ऊपर ते गिरि परा, मन माया के पास ॥
कबिरा मन ही गयन्द है, आँकुस दै दै राखि ।
विष की बेलि पर हटो, अमृत के फल चाखि ॥
चोर भरोसे साह के, लाया वस्तु चौराय ।
पहिले बान्धो साहु को, चोर आप बन्धि जाय ॥

आशा का अंग

आशा एक जो राम की, दूजी आश निवारि।
दूजी आशा मार सी, ज्यों चोपर की सार॥
आसा वेली कर्म बन, गरजै मन के साथ।
तिर्सना फूल चमकना, फल करता के हाथ॥
जो तू चाहै मुझहिं को, मन कछु राखै आस।
मुझ हि सरीखा है रहो, सब कछु तेरे पास।
आसन मारे कहा भयो, मरी न मन की आस।
तेली केरे बैल ज्यों, घर ही कोस पचास॥
सब आसन आसा तने, निवरित कोई नाहिं।
निवृत्ति को जानै नहीं, प्रवृत्ति परपंच माँहि॥
वाड़ चढ़ंती बेलरी, उरझी आसा फंद।
टूटे परै जूटे नहीं, भई जो वाचा बन्ध॥

माया का अंग

कबिरा माया पापिनी, फन्द लै बैठी हाटि।
सब जग तो फन्दै परा, गया कबीरा काटि॥
माया छाया एकसी, बिरला जानै कोय।
भगना के पाछै फिरै, सनमुख आगे होय॥
कबिरा माया वेसवा, दोनूं की यक जात।
आवत कौं आदर करे, जात न बूझै बात॥
जल में अन जो ना चुरै, घृत में पाक न होय।
कहै कबीर या साखी को, अर्थ करै सब कोय॥
तीन गुनन की बादली, ज्यों तरुवर की छाँह।

बाहिर रहै सो ऊबरे, भीगे मन्दिर मांहि ॥

सत्य कबीर की कविता के कठिन शब्दों का अर्थः—

पारस=इसके स्पर्श से लोहा भी सोना हो जाता है। अन्तरो=भेद। जाचक=याचक, माँगने वाला। पतियाय= विश्वास करे। भुवंग=भुजंग साँप। कापथ =चित्रगुप्त=मरे हुए व्यक्ति के पाप पुण्य का हिसाब रखने वाला।

बिराना=दूसरे का। रंक=गरीब। गयन्द =हाथी। चोर= मन। साह=शरीर। वस्तु=माया। जन=माया। अन्न= आत्मा। चुरै= परिपक्व नहीं होता। बादली=माया। तरुवर की छाँह=वृक्ष की छाया के समान स्थिर नहीं।

महाकवि सुन्दर— (१६५३—१७४६)

मनहर छन्द

शूरातन के अंग प्रकरण से उद्धृतः

सुनत नगारे चोट, बिकसै कमल मुख।
अधिक उछाह फूल्यो, मायहु न तन में ॥
फेरे जब सांग तब, कोई नहीं धीर धरै।
कायर कम्पायमान, होन देखि मन में ॥
कूदत पतंग जैसे, परत पावक माहिं।
ऐसे टूटि परे बहु, साँवन के घन मे ॥
मारि घमसान करि, सुन्दर जुहारैं श्याम।
सोई शूरवीर रोपि, रहै जाइ रन में ॥
हाथ में गहै खड़ग, मारवे कूं एक पग।

तन मन अपनों, समरपण कीनो है ॥
आगे करि मीच कूं जु, परयो ड़ाकि रण बीच।
टूक टूक होइ के, भगाय दल दीनो है।
खाइ लौन श्याम को, हराम खोर कैसे होइ।
नाम याद जगत में, जीत्यो पन तीनों हैं।
सुन्दर कहत ऐसो, कोउ एक शूरवीर ।
शीशकूं उतारि कै, सुयश जाय लीनो है ॥२॥
पाँव रोय रहे रण माँहि, रजपूत कोउ।
हय, गज गाजत, जुरत जहाँ दल है॥
बाजत जुझाउ सहनाई, सिंधु रागि पुनि ।
सुनत हि कायर कि, छूटि जात कल है ॥
झलकत बरछी, तिरछी तरवार बहै ।
मार मार करत, परत खल मल है ॥
ऐसे युद्ध में अडिग्ग, सुन्दर सुभट सोई ।
घरमांहिं शूरमा, कहावत सकल है ॥३॥

अशन वसन बहु, भूषण सकल अंग ।
सम्पत्ति विविध भान्ति, भरयो सब घर है ।
श्रवण नगारो सुनि, छिनक में छाड़ि जात ।
ऐसे नहीं जानैं कछु, मेरो वहाँ मर है ।
मनमें उछाहि रणमाहिं, टूक टूक होई ।
निर्भय निःशंक वाके, रचहू न डर है ॥
सुन्दर कहत कोउ, देह को ममत्व नाहिं ।
शूरमा को देखियत, शीश विनु धर है ॥४॥

जूझिवे को चाव जाके, ताकि ताकि कटै घाव ।
आगे धरि पाँव फिर, पीछे न संभार है ।
हाथ लिये हथियार, तीछन लगावे धार ।
बार नहिं लागै सब, पिसुन प्रहारि है ।
वोट नहिं राखै कछु, लोट पोट होइ जाइ ।
चोट नहिं चूकै शीश, रिपु को उतारि है ।
सुन्दर कहत ताहि, नेकहू न शोच पोच ।
सोई शूरवीर धीर, मर जाइ मारि है ॥५॥
अधिक आजान वाहु, मन में उछाह किये ;
दीये गज ढाहि मुख, वरषत नूर है ।
कीढै जब तरवार, बाल सब ढाढ़ै होइ ;
अति विकराल पुनि, देखत करूर है ॥
नेकु न उसांस लेतू, फौंज कू फिटाइ देत ।
खेत नहीं छाँडै मारि, कटै चकचूर है ।
सुन्दर कहत ताकी, कीरति प्रसिद्ध होइ ;
सोइ शूरवीर, धीर, श्याम के हजूर है ॥६॥
ज्ञान को कवच अंग, काहू कू न होइ भंग ।
टोप शीश झलकत, परम विवेक है ॥
तन ताजी असवार, लीये समशेर सार ।
आगे हीकूं पांव धरै, भोगने की टेक है ॥
छूटत बन्दूक बान, मचै जहाँ घमसान ।
देखि कै पिसुन दल, मारत अनेक है ॥
सुन्दर सकल लोक माहिं, ताको जै जै कार ।
ऐसो शूरवीर कोऊ, कोटिन में एक है ॥७॥

शूरवीर रिपु सनमुख, देखि चोट करै।
मारै तब ताकि ताकि, तरवार तोर सूं॥
साधु आठों याम बैठो, मन ही सूं युद्ध करै।
जाके मुंह माथो नहिं, देखिये शरीर सूं॥
शूरवीर भूमि पर, दूर ही न दौरि लगै।
साधु सों न कोप करै, राखै धीर धीर कूं॥
सुन्दर कहत तहाँ काहू को न पैर टिकै।
साधु को संग्राम है, अधिक शूरवीर सूं॥८॥
खैंचि करड़ि कमान, ज्ञान को लगायो बान।
मारयो महा बल मैन, जग जिन रान्यो है॥
ताके अगवानी पंच, योधाहू कतल किये।
और रह्यो पर्‌यो सब, अरि दल भान्यो है॥
ऐसो कोउ सुभट, जगत में न देखियत।
जाके आगे काल हूसों, कंपि के परान्यो है॥
सुन्दर कहत ताकी, शोभा तिहूँ लोक माहिं।
साधु सों न शूरवीर, कोउ हम जान्यो है॥९॥
काम सों प्रबल महा, जीते जिन तीन लोक।
सो तौ एक साधु के, विचार आगे हार्‌यो है॥
क्रोध सों कराल जाके, देखत न धीर धरै।
सोउ साधु क्षमा के, हथ्यार सूं विदार्‌यो है॥
लोभ सो सुभट साधु, तोष सूं गिराय दियो।
मोह सों नृपति साधु, ज्ञान सूं प्रहार्‌यो है॥
सुन्दर कहत ऐसी, साधु कोउ शूरवीर।
ताकि ताकि सब ही पिसुन दल मार्‌यो है॥१०॥

मारे काम क्रोध सब, लोभ मोह पीसि डारे।
इन्द्रि हु कतल करि, कियो रजपूतो है॥
मार्यो महा मत्त मन, मारे अहंकार मीन।
मारे मद मत्सर, ऐसो रण रूतो है॥
मारी आशा तृष्णा पुनि, पापिनी साँपिनी दोउ।
सब को प्रहार करि, निज पद हूतो है॥
सुन्दर कहत ऐसो, साधु कोई शूरवीर।
बैरी सब मारि के, निचिन्त होइ रातो है॥११॥
कियो जिन मन हाथ, इन्द्रिन को सब साथ।
बेरि घेरि आपने ही, नाथ सू लगाये हैं॥
और हू अनेक बैरी, मारे सब युद्ध कार।
काम-क्रोध-लोभ-मोह, खोद के बहाये हैं॥
कियो है संग्राम जिन, दियो है भगा हू दल।
ऐसे महा सुभट सु, ग्रन्थन में गाये हैं॥
सुन्दर कहत और, शूर यूंहि खपि गये।
साधु शूर वीर वेई, जगत में आये हैं॥१२॥
महा मत्त हाथी मन, राख्यो है पकरि जिन।
अति ही प्रचण्ड जामें, बहुत गुमान है॥
काम, क्रोध, लोभ, मोह, बाधे चारा पाव पुनि।
छूटने न पावैं नेक, प्राण पीलवान है॥
कबहुं जो करै जोर, सावधान साँझ भोर।
सदा एक हाथ में, अंकुश गुरु ज्ञान है॥
सुन्दर कहत और, काहु के न वश होइ।
ऐसो कौन शूरवीर, साधु के समान है॥१३॥

महा कवि सुन्दर की कविता के कठिन शब्दों का अर्थ:—

विकसै = फूल की कलियों के समान खिले। उछाह = उत्साह। माय हु न तन में = शरीर में नहीं समाता है। साँग = अस्त्र विशेष। पतङ्ग = पाँखी कीड़े। पावक = अग्नि। जुहारै = बन्दना करना। मीचकूं = मृत्यु को। अडिग्ग = अटल। अशन = भोजन। वसन = वस्त्र। विकराल = भयानक। फिटाइ-देत = हटा देना। खेत = मैदान। कवच = जरा वख्तर। टोप = शरीर, देह। झलकत = प्रकाशित होता है। नाजी = घोड़ा। सम-शेर = तलवार। भान्यो है = नाश किया। सुभट = योद्धा। विदार्यो = फाड़ा है। पिसुन = चुगुल खोर। संग्राम = लड़ाई। प्रचण्ड = तेज। पीलवान = हाथीवान। ड़ाकि = कूदना।

मलिक मुहम्मद जायसी (१५४६—१५६८)

पद्मावत से:—मान सरोदक खण्ड।

एक दिवस पून्यो तिथि आई। मान सरोदक चली नहाई॥
पद्मावती सब सखि बुलाई। जनु फुलवारि सबै चलि आई॥
कोइ चम्पा कोई कुन्द सहेली कोउ सुकेत, करता, रसबेली।
कोइ सु गुलाल सुदरसन राती, कोइ सो बकानरि बकुचन भाँति।
कोइ सो मौलसिरि, पुहपावती, कोइ जाही, जूही, सेवती।
कोइ सो न जरद, कोइ केसर, कोइ सिंगार हार नागे सर।
कोइ कूजा सदवर्ग चमेली, कोइ कदम सरस रसबेली॥

चलीं सबै मालति संग फूली कंवल कुमोद।
बेधि रहे गन गन्धरव बास परमदा मोद॥

खेलत मानसरोवर गई। जाइ पाल पार ठाढ़ी भई।

देखि सरोवर हँसै कुलेली पद्मावति सौं कहहिं सहेली ।
ए रानी ! मन देखु विचारी, एहि नैहर रहना दिन चारी ।
जो लोग अहै पिता कर राजू । खेलि लेहु जो खेलहु आजू।
फिर सासुर हम गवन ब कानी । कित हम कित यह सरवर पाली।
कित आवत पुनि अपने हाथा । कित मिलि कै खेलन एक साथा।
सासु ननद बोलिन्ह जिउ लेहीं। दारुन ससुर न निसरै देही ।
पिउ पियार सिर ऊपर । पुनि सो करै दहुं काह ।
दहुं सुख राखै कि दुख, दहुं कस जनम निवाह ।।
मिलहिं रहसि सब चढहिं ड़ोरी । भूलि लेहिं सुख बारी भोरी ।
भूलि लेहु नैहर जब ताईं । फिर नहीं भूलन दे इहि साईं ।
पुनि सासुर लेइ राखि हि महाँ । नैहर चाहन पाउब जहां ।
किन यह धूप, कहाँ यह छाया । रहब सखी बिनु मन्दिर माँहा ।
गुन पूछिहि औ लाइ हि दोखू । कौन उतर पाउब त हें मोखू ।
सासु ननद के भौंह सिकोरे । रहब संकोच दुवौ कर जोरे ।।
कित यह रहसि जो आऊब करना, ससुरेउ अन्त जन्म दुःख भरना।
कित नैहर पुनि आऊब, कित ससुरे यह खेल ।
आपु आपु कइं हो इहि परब पंखि जस ड़ेल ।।
सरवरतीर पदमिनी आई । खोंया छोटि केस मुकलाई।
ससि मुख, अंग मलय गिरि वासा, नागिन झाँपि लीन्ह चहुं पासा।
औ नई घटा परी जग छाहाँ, ससि कैसरन लीन्ह जनु राहाँ ।
छपि गै दिन ही भानु कै दसा । लेहि निसि नखत चाँद परगसा।
भूलि चकोर दीठि मुख लावा । मेघ घटा में चन्द दिखावा ।
दसन दामिनी कोकिल भाखी । भौंहें धनुष व गगन लेइ राखी ।
नैन खञ्जन दुइ केलि करेहीं । कुचनारंग मधुकर रस लेहीं ।

सरवर रूप विमोहा, हिये हिलोर हिं लेइ।
पांव छुवै मकु पावौं एहि मिस लहर हि देइ॥
धरी तीर सब कंचुकि सारी। सरवर में पैठी सब बारी।
पाइ नीर जानौं सब बेली। हुल सहिं करहिं काम कै केली।
कोहिल के स विसहर विष भरे। लहरें लेहिं कंवल मुख धरे।
नवल वसन्त संवारी करी। होइ प्रगट जानहु रसभरी।
उठी कोंप जस दारिवं दाखा। भई उनंत प्रेम के साखा।
सखि रनहिं समाइ संसारा। चाँद नहाइ पैठ लेइ तारा॥
धनि सो नीर ससि तरई ऊई। अब किन दीन्ह कमल औ कूई॥
चकई बिछुरि पुकारै, कहाँ मिलौं हों नाँह।
एक चाँद निसि सरगम हूँ, दिन दूसर जल माँह॥
लागीं केलिकरै मझ नीरा। हंस लजाइ बैठ ओहि तीरा॥
पद्मावती कौतुक कहं राखी। तुम ससि होहु तरा इन्ह साखी॥
बाद मेलिकै खेल पसारा। हार देइ जो खेलत हारा॥
संवरि हि साँवरि, गोरिहिं गोरी।

आपनि आपनि लीन्ह सो जोरी॥
बूझि खेल खेलहु एक साथा। हार न होइ पराये हाथा॥
आजहु खेल बहुरि किन होई। खेल गये किन खेलै कोई ?॥
धनि सो खेल खेल सह प्रेमा। रडताई औ कूशल खेमा ?॥
मुहम्मद बाजी प्रेम कै, ज्यों भावैं त्यों खेल।
तिल फूल ही के संग ज्यों, होइ फुलायल तेल॥
सखी एक तेइ खेल न जाना। मैं अचेत मनिहारगंवाना॥
कंवल डाल गहि मैं बेकरारा। कासी पुकारौ आपन हारा॥

किन खेलै आइऊं एहि साथा। हार गंवाइ चलिऊं लेइ हाथा॥
घर पैठत पूंछव यह हासू। कौन उतर पाउन पैसारू॥
नैंन सीप आँसू तस भरे। जानौं मोति गिरहिं सब ढरे॥
सखिन कहा बौरि कोकिला। कौन पानि जेहि पौन न मिला॥
हार गंवाइ सो ऐसे रोवा। हेरि हेराइ लेइ जौ खोवा॥

लागी सब मिली हेरै, बूडि-बूडि एक साथ।
कोई उठी मोती लेइ, काहू घोंघा हाथ॥

कहा मानसर चाह सो पाई। पारस रूप इहां लगि आई॥
भा निरमल तिन्ह पायन्ह परसे। पावा रूप रूप के दरशे॥
मलय समीर बास तन आई। भा सीतल, गै नयनि बुझाई॥
न जनौ कौन पौन लेइ आवा। पुन्य दसा, में पाप गंवावा॥
तन्त खन हार बेगि उतिराना। पावा सखिन्ह चंद बिहसाना॥
बिगसा कुमुद देखि ससि-रेखा। मैं तहं ओपजहाँ जोइ देखा॥
पावा रूप रूप जस चहा ससि। मुख जस दरपन होइ रहा॥

नयन जो देखा कंवल सा, निरमल कीर सरीर।
हंसत जो देखा हंससा, दसन जोति नग हीर॥

अखरावट से :—

हुना जो सुन्न-म-सुन्न गाँव ठाँव ना सुर सबद।
तहाँ पाप नहीं पुन्न, मुहम्मद आपुहि आपु महं॥१॥
नव भा पुनि अंकूर, सिरजा दीपक निरमला।
रचा मुहम्मद नूर, जगत् रहा उजियार होइ॥२॥
हुआ जो एक ही संग, हौं तुम्ह काहे बीछुरा?

अब जिउ उठै तरङ्ग मुहम्मद कहा न जाइ किछु ? ॥३॥
परे प्रेम के झेल, पिउ सहुं धनि मुख सो करै।
जो सिर सेंती खेल, मुहम्मद खेल सो प्रेम रस ॥४॥
रहेउ न हुइ मर्द बीचु, बालक जैसे गरभ महं।
जग लेइ आई मीचु, मुहम्मद रोएउ बिछुरिकै ॥५॥
आगि, बाउ, जल, धूरि चारि मेरइ भाँड़ा गढ़ा।
आपु रहा भरिपूरि मुहम्मद आप ही आप में ॥६॥
जेहि घर ठग हैं पाँच, नवौं बार चहु दिसि फिरि हिं।
सो घर केहि मिल बीच ? मुहम्मद जौ निसि जागिए ॥७॥
सुन्न समुद चख माहिं जल जैसी लहरैं उठहिं।
उठि उठि मिटि मिटि जाहिं; मुहम्मद खोज न पाइए ॥८॥
बिगरि गए सब नाँव, हाथ, पाँव मुंह सीस धर।
तोर नाँव केहि ठाँव; मुहम्मद सोइ विचारिए ॥९॥
एकहि तें दुइ होइ; दुःख सों राज न चलि सकै।
बीचु ते आपुहि खोइ; मुहम्मद एकै होइ रहु ॥१०॥
केहु नहीं लागि हि साथ; जब गौनब क विलास महं।
चलव झारि दोउ हाथ मुहम्मद यह जग छोड़िकै ॥११॥
सांईं के भण्डारू, बहु मानिक मुकुता भरे।
मन चोरहि पैसारु; मुहम्मद तो कछु पाइए ॥१२॥
सुनि हस्ती कर नाँव; अंधरन टोवा धाइ कै।
जेइ टोवा जेहि ठाँव; मुहम्मद सो तैसे कहा ॥१३॥

देखि समुद महं सीप; बिनु बूड़ै पावै नहीं।
होइ पतंग जल दीप; मुहम्मद तेहिं धस लीजिए ॥१४॥
मन अहथिर कै टेकु दूसरा कहना छाँडि दे।
आदि अन्त जो एक; मुहम्मद कहु; दूसर कहाँ ॥१५॥
जो किछु है सो है सब: ओ हि बिन नाहिन कोइ।
जो मन चाहा सो किया; जो चाहै सो होय ॥१६॥

मानसरोदक खण्ड के कठिन शब्दों का अर्थ :—

केन=केतकी। करना=पुष्प विशेष। कूज=श्वेत जंगली गुलाब। पाल=बाँध, किनारा। चाह=खबर। खोंपा=चुटला, जूड़ा=पञ्जाबी में गुत्त। मुकलाई=खोल कर। मकु=कभी। करिल=काले। बिसहर = विषधर, साँप। करी = कली। कोंप=कोंपल। उनंत=झुकती हुई। साखी: निर्णय करने वाला, पञ्च। वाद मेलिकै = बाजी लगा कर। रउताई = रावत या मालिक होने का भाव, ठकुराई। फुलावल=फुलेल। चाह= खबर, आहट।

अखरावट के कठिन शब्दों का अर्थ :—

सुन्न-म-सुन्न=बिल्कुल शून्य। मुहम्मद आपुहि ,आपुमहं= उस समय ईश्वर की कलाएं ईश्वर में ही लीन थीं, जगत् रूप में उनका विकास नहीं हुआ था। हुता जो एक ही संग—जीव पहिले ईश्वर से पृथग् नहीं था। उठे तरङ्ग = वियुक्त होने के कारण मन में भाव उठते हैं। झेल=थपेड़ा = हिलोर। सहुं सामने। सेंती=से। मेरइ = मिला कर। पाँच ठग=काम,

क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या। चख=नेत्र। कविलास=स्वर्ग। मन चोर हिपैसारू = मन रूपी चोर को उस दसवें द्वार पर पहुंचाइये।

मुनि हस्ती—कहा=कुछ अंधे यह देखने के लिये हाथी कैसा होता है, हाथी को टटोलने लगे। जिसने पूंछ टटोली उसने कहा हाथी रस्सी के समान होता है, जिसने पैर देखा, उसने कहा हाथी खम्बे के समान होता है। यही दशा ईश्वर और जगत के सम्बन्ध में लोगों के ज्ञान की है। अहथिर कै=अहं स्थिरं कृत्वा=जीवात्मा को स्थिर करके।

गोसाईं तुलसीदास (१५८६—१६८०)

परशुराम लक्ष्मण सम्वाद से :—

दोहा—सन्त वेष करनी कठिन, बरणि न जाय स्वरूप।
धरि मुनि जनु तनु वीर रस, आये जहं सब भूप॥

देखन भृगुपति वेष कराला। उठे सकल भय विकल भुआला॥
पितु समेत कहि निज निज नामा। लगे करन सब दण्ड प्रणामा॥
जेहि सुभाय चितवहिं हित जानी। सो जानइ जनु आयु खुटानी॥
जनक बहोरी आय शिर नावा। सीय बुलाय प्रणाम करावा॥
आशिष दीन्ह सखी हरषानी। निज समाज लै गई सयानी॥
विश्वामित्र मिले पुनि आई। पद सरोज में लें दोउ भाई॥
राम लषण दशरथ के ढोटा। देखि अशीश दीन्ह भलि जोटा॥
रामहिं चितै रहे थकि लोचन। रूप अपार मार मद मोचन॥

दोहा—बहुरि विलोकि विदेह सन, कहहु काहु अति भीर ।
पूंछत जानि अजान जिमि, व्यापेउ कोप शरीर ॥
समाचार कहि जनक सुनाये । जेहि कारण महीप सब आये ॥
सुनत बचन फिरि अनत निहारे । देखे चाप खण्ड महि डारे ॥
अति रिस बोले बचन कठोरा । कहु जड़ जनक धनुष केहि तोरा ॥
बेगि दिखाउ मूढ न तु आजू । उलटौं महि जहं लगि तव राजू ॥
अति डर उतर देत नृप नाहीं । कुटिल भूप हरषै मन माहीं ॥
सुर मुनि नाग नगर नर नारी । सोचहिं सकल त्रास उर भारी ॥
मन पछताति सीय महनारी । विधि संवारि सब बात बिगारी ॥
भृगुपति कर स्वभाव सुनि सीता । अर्ध निमेष कल्प सम बीता ॥
दोहा—समय विलोके लोक सब, जानि जानकी भीरु ।
हृदय न हर्ष विषाद कछु, बोले श्री रघुवीरु ॥
नाथ शंभु धनु भंजन हारा । होइहि कोउ एक दास तुम्हारा ॥
आयसु काह कहिये किन मोहीं । सुनि रिसाय बोले मुनि कोही ॥
सेवक सो जो करै सेवकाई । अरि करणी करि करिय लराई ॥
सुनहु राम जेहि शिव धनु तोरा । सहस बाहु सम सो रिपु मोरा ॥
सो विलगाउ विहाय समाजा । न तु मारे जैहैं सब राजा ॥
सुनि मुनि वचन लषन मुसकाने । बोले परशुधरहिं अपमाने ॥
बहु धनु हो मोरी लरिकाई । कबहुं न अस रिसि कीन्ह गुसाईं ॥
एहि धनु पर ममता केहि हेतु । सुनि रिसाय कह भृगु कुल केतू ॥
दोहा—रे नृप बालक काल वश, बोलत तोहिं न संभार ।
धनुहीं सम त्रिपुरारि धनु, विदित सकल संसार ॥

लषण कहा हँसि हमरे जाना। सुनहु देव सब धनुष सयाना ॥
का क्षति लाभ जीर्ण धनु तोरे। देखा राम नये के भोरे ॥
छुवत टूट रघुपतिहु न दोष। मुनि बिन काज करिय कन रोषू ॥
बोले चितइ परशु की ओरा। रे शठ सुनेसि सुभाउ न मोरा ॥
बालक बोल बधौं नहिं तोहीं। केवल मुनि जड़ जानहि मोहीं ॥
बाल ब्रह्मचारी अति को ही। विश्व विदित क्षत्रिय कुल द्रोही ॥
भुज बल भूमि भूप बिन कीन्ही। विपुल वार महि देवन्ह दीन्ही ॥
सहस बाहु भुज छेदन हारा। परशु बिलोकु महीप कुमारा ॥
दोहा—मातु पितुहिं जनि शोच वश, करसि महीप किशोर।
गर्भन के अर्भक दलन, परशु मोर अति घोर ॥
विहँसि लषण बोले मृदु बानी। अहो मुनीश महा भट मानी ॥
पुनि पुनि मोहि दिखाय कुठारा। चहत उड़ावन फूंकि पहारा ॥
इहाँ कुम्हड़ बतिया कोउ नाहीं। जो तर्जनी देख मरि जाहीं ॥
देखि कुठार शरासन बाना। मैं कछु कहेऊं सहित अभिमाना ॥
भृगु कुल समझि जनेउ बिलोकी। जो कुछ कहहु सहऊं रिस रोकी ॥
सुर महिसुर हरिजन अरुगाई। हमरे कुल इन पर न शुराई ॥
बधे पाप अपकीरति हारे। भारत हू पा परिय तुम्हारे ॥
कोटि कुलिश सम बचन तुम्हारा। वृथा धरहु धनु बाण कुठारा ॥
दोहा—जो बिलोकि अनुचित कहेउं, क्षमहु महामनि धीर।
सुनि सरोष भृगु वंश मणि, बोले गिरा गम्भीर ॥
कौशिक क्षमहु मन्द यह बालक।
कुटिल काल वश निज कुल चालक ॥

भानु वंश राकेश कलंकू। निपट निरंकुश निठुर निशंकू ॥
काल कवर होइहि क्षण माहीं। कहउं पुकारि खोटि मोहिं नाहीं ॥
तुम हट कहु, जो चहहु उबारा। कहि प्रताप बल रोष हमारा ॥
कौशिक कहा क्षत्रिय अपराधू। बाल दोष गुन गनहिं न साधू ॥

लषण कहेउ मुनि सुयश तुम्हारा।
तुमहिं अछत को बरणहि पारा ॥
अपने मुख तुम आपनि करनी।
बार अनेक भांति बहु बरनी ॥
नहिं सन्तोष तौ पुनि कछु कहहू।
जनि रिस रोकि दुःसह दुःख सहहू ॥

वीर वन्ति तुम धीर अछोभा। गारी देत न पावहु शोभा ॥
दोहा—शूर समर करणी करहिं, कहिं न जनावहिं आपु।
विद्यमान रिपु रण, कायर करहिं प्रलापु ॥

तुम तौ काल हाँ कि जनु लावा।
बार-बार मोहि लागि बुलावा ॥
सुनत लषण के वचन कठोरा।
परशु सुधारि धरेउ कर घोरा ॥
अब जनि देहूं दोष मोहिं लोगू।
कटु वादी बालक बध योगू ॥
बाल बिलोकि बहुत मैं बाँचा।

अब यह मरण हार भा साँच ॥
कर कुठार मैं अकरण कोही। आगे अपराधी गुरु द्रोही ॥
उतर देत छाँडेउं बिन मारे। केवल कौशिक शील तुम्हारे ॥
दोहा—गाधि सूनु कह हृदय हंसी, मुनिहिं हरि अरह सूझ।

अज्ञ गव खरडेउ ऊख जिमि, अजहुं त बूझ अबूझ ॥
कहेउ लषण मुनि शील तुम्हारा। को नहिं जान विदित संसारा ॥
माता पित उऋण भयनीके। गुरु ऋण रहा शोच बड़ जी के ॥
सो जनु हमरे हि माथे काढ़ा। दिन चलि गयेउ व्याज बहु बाढ़ा ॥
अब आनिय व्यवहरिया बोली। तुरत देउं मैं थैली खोली ॥
सुनि कटु बचन कुठार सुधारा। हाय हाय सब सभा पुकारा ॥
भृगुवर परशु दिखावहु मोही। विप्रविचारि बचप नृप द्रोही ॥
मिलेन कबहुं सुभटरण गाढ़े। द्विज देवता घर हि के बाढ़े ॥
अनुचित कहि सब लोग पुकारे। रघुपति सैनहि लषण निवारे ॥
दोहा—लषन उतर आहुतिसरिस। भृगुवर कोप कृशानु।

बढ़त देखी जल समवचन। बोलै रघुकुल भानु ॥
नाथ करहु बालक पर छोहू। सूध दूध मुख कटिय न कोहू ॥
जो पै प्रभु प्रभाव कछु जाना। नौ कि बराबरि करइ अयाना ॥
जो लरिका कछु अचगटि करहीं। गुरु पितु मातु मोदमन भरहीं ॥
करिय कृपा शिशु सेवक जानी। तुम समशील धीर मुनी ज्ञानी ॥
राम बचन सुन कछुक जुड़ाने। कहि कछु लषन बहुरि मुसकाने ॥
हंसत देखि नख शिखरिस व्यापी। राम तोर भ्राता बड़ पापी ॥
गौर शरीर श्याम मन माहीं। काल कूट मुख पय मुखनाहीं ॥

सहज टेढ अनुहर इन तोहीं। नीच मीच सम देखन मोही ॥
दोहा—लषन कहे उ हंसि । सुनहु मुनि। क्रोध पापकर मूल ॥
जेही वशजन अनुचित करहिं। चरहिं विश्व प्रतिकूल ॥
मैं तुम्हार अनुचर मुनि राया। परिहरि कोप कटिय अब दाया॥
टूट चाप नहीं जुरहि रिसाने । बैठिय होइहिं पाँय पिराने ॥
जो अति प्रिय तो करिय उपाई। जोरिय कोउ बड़ गुणी बुलाई ॥
बोलत लषण जनक डराहीं। मष्ट करहु अनुचित भलनाहीं ॥
थर थर काँपहिं पुर नर नारी । छोट कुमार खोट बड़ भारी॥
भृगु पति सुनि सुनि निर्भय बानी। रिस तनु जरै होय बल हानी॥
बोले रामहिं देहि निहोरा ! बचउ विचारि बंधु लघु तोरा ॥
मन मलीन तनु सुन्दर कैसे। विष रस भरा कनक घट जैसे ॥

कठिन शब्दों का अर्थ:—

भुवाला=भूपाल=राजा। पद सरोज=चरण कमल।टोटा पुत्र। अनत निहारे=दूसरी की ओर देखना । अर्ध निमेष= आधापल। आयसु=आज्ञा। रिसाय=क्रोध करके। सहस्त्रबाहु को परशुरामने मार डाला था (पोराणिककथा) त्रिपुरारी शिव। क्षति=हानि। कुम्हड़ बतिया=छूई मूई का फूल। कुलिश वज्र। सरोष=क्रोध के साथ। राकेश=राका+ईश=रात्री का स्वामी अर्थात् चाँद। कौशिक=विश्वामित्र । अछत=होते हुए। कोही=क्रोधी । गाधिसूनु=विश्वामित्र ।अरइ=अरि= शत्रु। अजगड़ वज्रसार । ऊख=गन्ना। सरिस=सदृश= तुल्य । कृशानु=अग्नि। अमाना=अज्ञान।अचगटि=अनुचित मोच=मृत्यु। पिराने=दुखते होंगे। मष्टकरहु=चुप कर दो। कनक घट=सोने का घटा।

गोसाईं तुलसीदास—

कवितावली से—

सुजान सिरो मनि हौ, हनुमान!
सदा जन के मन वास तिहारो॥
ढारो बिगारो मैं काको कहा?
केहि कारन खीझत हौं तो तिहारो॥
साहिब सेवक नातें तें हाती कियौ,
तो तहाँ तुलसी को न चारो।
दोष सुनाय ते आगे हुं को,
हुसियार ह्वै हौं, मन तो हिय हारो।
राम गुलाम तु ही हनुमान,
गुसाईं गुसाईं सदा अनुकूलो।
पाल्यौं हौं वाल ज्यों आखिर तू,
पितु-मातु जो मंगल मोद समूलो।
बाहुं की बेदन, बाँह पगार!
पुकारत आज आनन्द भूलो।
श्री रघुवीर निवारिये पीर, रहौं दरबार पर्‌यो लटि लूलो॥

विनय पत्रिका से—

राम जपु, राम जपु, राम जपु, बावरे।
घोर भव नीर नीधि, नाम निजु नावरे?

एक ही साधन, सब रिधि-सिधि, साधिरे।
ग्रसे कलि रोग, जोग संयम समाधि रे।
भलो जो है, पोच जो है, दाहिनो जो वाम रे।
राम नाम ही सो अंत, सब ही को काम रे।
जग नभ वाटिका रही है फली-फूलि, रे।
धुवां कैसे धौर हर, देखि तू न भूलि रे।
राम नाम छाँडि, जो भरोसो करे और से।
तुलसी परोसों त्यागि, माने कूर कौर रे।

रघुपति विपति दनन।

परम कृपालु प्रनत प्रति पालक, पतित पावन।
कूर कुटिल कुल हीन, दीन अति मलिन जवन।
सुमिरत नाम राम २ पठए सब अपने भवन।
गज, पिंगला, अजामिल से खल गनै धौं कवन ?
तुलसिदास प्रभु के दिन दीन्हि गति जानकी-रवन॥

रामलता नहछू से—

गावहिं सब रनिवास, देहिं प्रभु गारि हो।
रामलला सकुचाहिं देखि, महतारी हो॥
हिल-मिल करत सवाँग सभा रस केलि हो।
नाउनि मन हरषाई, सुगन्धन मेहि हो॥१॥
दूलह के महतारि देखि, मन हरषई हो।
कोटिन्ह दीन्हेउ दान मेघ जनु बरखइ हो॥
राम लला कर नहछू, अति सुख गाइय हो।
जेहि गाये सिधि होइ परम निधि पाइय हो॥२॥

दसरथ राउ सिंहासन बैठि, विराजहिं हो ।
तुलसिदास बलि जाहि देखि रघुराजहिं हो ॥
जे यह नहछू गावैं, गाइ सुनावइं हो ।
ऋद्धि, सिद्धि, कल्यान, मुक्ति नर पावइं हो ॥

बरवै रामायण से बालकाण्ड

केस-मुकुत सखि मरकत मनिमय होत ।
हाथ लेत पुनि मुक्ता करत उदोत ॥१॥
सम सुबरन सुखमाकर सुखद न थोर ।
सीय अंग, सखि ! कोमल, कनक कठोर ॥२॥
सिय मुख सरद कमल जिमि किमि कहि जाइं ।
निसि मलीन वह, निसि दिन यह विगसाइ ॥३॥
बड़े नयन, कटि, भृकुटी, भाल विसाल ।
तुलसी मोहत मनहिं मनोहर लाल ॥४॥
चम्पक हरवा अङ्ग मिलि, अधिक सोहाइ ।
जानि परै सिय हियरे, जब कुम्भिलाइ ॥५॥
सिय तुव अङ्ग रङ्ग मिलि, अधिक उदोत ।
हार बेलि पहिरावौं, चम्पक होत ॥६॥
साधु सुसील सुमति सुचि सरल सुभाय ।
राम नीति रत काम कहा यह पाव ? ॥७॥
कुंकुम तिलक भाल, स्रुति कुण्डल लोल ।
काक पच्छ मिली, सखि ! कस लसत कपोल ॥८॥
भाल तिलक सर, सोहत भौंह कमान ।

मुख अनुहरिया केवल चन्द समान ॥९॥
तुलसी बंक विलोकनि, मृदु मुसकानि ।
कस प्रभु नयन कमल, अस कहौं बखानि ॥१०॥
काम रूप सम तुलसी राम सरूप ।
को कवि सम सरि करै परै भव कूप ? ॥११॥
चढ़त दसा यह उतरत जात निदान ।
कहौं न कबहुं करकस भौंह कमान ॥१२॥
नित्य नेम-कृत अरुन उदय जब कीन ।
निरखि निसाकर-नृप-मुख भये मलीन ॥१३॥
कमठ पीठ धनु सजनी कठिन अन्देस ।
तमकि ताहि ए तोरिहि कहब महेस ॥१४॥
नृप निरास भये, निरखत नगर उदास ।
धनुष तोरि हरि सब कर हरेउ हरास ॥१५॥
का घूंघट मुख मून्दहु नवला नारि ?
चाँद सरग पर सोहत यहि अनुहारि ॥१६॥
गरब करु रघुनन्दन जनि मन मांह ।
देखहु आपनि मूरति सिय कै छाँह ॥१७॥
उठी सखी हंसि मिस करि, कहि मृदु बैन ।
सिय रघुवर के भए उनींदे नैन ॥१८॥
सींक धनुष, हित सिखन, सकुचि प्रभु लीन ।
मुदित मांगि इक धनु ही नृप हंसि दीन ॥१९॥

अब शिष्टांश के कठिन शब्दों का अर्थ :—

निवारिये=निवारण करो, दूर करो। पीर=पीड़ा। नभ वाटिका=आकाश रूपी बागीची। पतित पावन=गिरे हुओं को पवित्र करने वाले। पावई=प्राप्त करता है। मुकता=मुक्ता=मोती। कनक=सोना। कुंकुम=केसर। लोल=चञ्चल। स्रुति (सं-श्रुति) कान। कुण्डल=कर्ण भूषण। बंक विलोकनि=टेढ़ी दृष्टि। मृदु मुसकानि=मीठी मुसकराहट। करकस (सं० कर्कश) कठोर।

महाकवि सूरदास १५४०—१६२०

नाथ सको तो मोहिं उधारौ।
पतितन मैं विख्यात पतित हौं, पावन नाम तुम्हारौ।
बड़े पतित पा संगहु नाहीं अजामिल कौन विचारौ।
भाजे नरक नाम सुनि मेरौ जम दीन्यौ हठि तारौ।
छुद्र पतित तुम तारि रमापति, अब न करौ जिय गारौ।
सूर पतित कौं ठौर नहीं तौ बहुत विरद कल भारौ ?

तुम कब मों सों पति उधार्‌यौ।
काहे कौं हरि विरद बुलावत बिन मसकत को तार्‌यौ।
गीध, व्याध, गज, गौतम की तिय, उनकौ कौन निहौरौ।
गनिका तरी आपनी करनी, नाम भयौ प्रभु तोरौ।
अजामील तौ विप्र तिहारौ, हुतौ पुरातन दास।
नैंकु चूक तैं यह गति कीनी, पुनि वैकुण्ठ निवास।
पतित जानि तुम सब जन तारे, रह्यौ न कोऊ खोट।
तौ जानौं जौ मोंहिं तारिहौ, सूर कूर कबि ढोट॥

पतित पावन हरि विरद तुम्हारौ कौने नाम धर्यौ ?
हौं तौ दीन, दुखित, अति दुरबल, द्वारैं रटत पर्यौ।
चारि पदारथ दिए, सुदामा तन्दुल भेंट धर्यौ।
द्रूपद सुता की तुम पति राखी, अम्बर दान कर्यौ।
संदीपन सुत तुम प्रभु दीने, विद्यापाठ कर्यौ।
बेर सूर की निठुर भए प्रभु, मेरौ कछु न सर्यौ॥

उधौ, चलौ विदुर कै जइयै।
दुरजोधन कै कौन काज जहं आदर भाव न पइयै।
गुरुमुख नहीं बड़े अभिमानी, कापै सेव करइयै ?
टूटी घानी, मेघ जल बरसै, टूटौ पलंग बिछइयै।
चरन धोइ चरनोदक लीन्हौ, तिया कहै प्रभु अइयै।
सकुचत फिरत जो बदन छिपाए, भोजन कहा मंगइयै।
तुम तौ तीनि लोक के ठाकुर, तुम तैं कहा दुरइयै ?
हम तो प्रेम प्रीति कै गाहक, भाजी साक छकइयै।
हंसि हंसि खात, कहत मुख महिमा, प्रेम प्रीति अधिकइयै।
सूरदास प्रभु भक्तनि कै बस, भक्तनि प्रेम बढ़इयै॥

जौ लौं मन कामना न छूटै।
तौ कहा जोग-जज्ञ-व्रत कीन्हैं, बिनु कन तुस कौं कूटै।
कहा सनान किये तीरथ के, अंग भस्म, जट जूटै ?
कहा पुरान जु पढै अठारह, ऊर्ध्व धूम के घूटै।
जग सोभा की सकल बड़ाई, इन तैं कछू न खूटै।
करनी और, कहै कछु औरै, मन दसहूं दिसि टूटै।

काम, क्रोध, मद, लोभ सत्रु हैं, जो इतनित सों छूटै।
सूरदास तब हीं तम नासै, ज्ञान अगिनि झर फूटै।
भक्ति पंथ कौं जो अनुसरै। सुत कलत्र सौं हित परि हरै॥
असन-बसन की चिन्त न करै। विस्वंभर सब जग कौं भरै॥
पसु जाके द्वारे पर होइ। ताकौं पोषत अह-निसि सोई॥
जो प्रभु के सरनागत आवै। ताकौं प्रभु क्यौं करि बिसरावै ?
मातु उदर में रस पहुंचावत। बहुरि रुधिर तैं छीर बनावत॥
असन काज प्रभु बन-फल करे। तृषा हेत जल झरना भरे॥
पात्र स्थान हाथ हरि दीन्हें। वसन काज बल्कल प्रभु कीन्हें॥
सज्जा पृथ्वी करी विस्तार। गृह गिरि कन्दर करे अपार॥
तातैं सब चिन्ता करि त्याग ! सूर करौ हरि पद अनुराग॥

कहाँ गयो मारुत पुत्र कुमार।

है अनाथ रघुनाथ पुकारे, संकट मित्र हमार।
इतनी विपति भरत सुनि पावैं आवैं साजि वरूथ।
कर गहि धनुष जगत कौं जीतैं, कितिक निसाचर जूथ।
नाहिंन और वियौ कोउ समरथ, जाहि पठावौं दूत।
को अब है पौरुष दिखरावै बिना पौन के दूत ?
इतनौ वचन सुनन सुनि हरष्यौ, फूल्यौ अंगन मात।
लै लै चरन-रेनु निज प्रभु की रिपु कै स्रोनित न्हात।
अहो पुनीत मीत केसरि-सुत, तुम हित बन्धु हमारे।
जिह्वा रोम-रोम पुनि नाहीं, पौरुष गनौ तुम्हारे।
जहां जहां जिही काल संभारे, तहं तहं त्रास निवारे।
सूर सहदू कियौ बन बसि कै, बन विपदा दुख टारै॥

हनुमान वचन श्रीराम प्रति

रघुपति, मन सन्देह न कीजै,

मो देखत लछिमन क्यौं मरि हैं मो कौं आज्ञा दीजै।
कहौ तो सूरज उगन देहुँ नहिं, दिसि दिसि बाढै नाम।
कहौ तो गन समेत ग्रसि खाऊं, जमपुर जाइन, राम।
कहौ तो काल हो खंड खड कटि, टूक टूक कटि काटौं।
कहौ तो मृत्युहिं मारि ड़ारिकै, खोदि पतालहिं पाटौं।
कहौ तो चन्द्र ही ले अकास तैं, लछिमन मुखहिं निचोरौं।
कहौ तो पैठि सुधाकै सागर, जल समस्त मैं बोरौं।
श्रीरघुवर मोलौं जन जाकै, ताहि कहाँ संकराई ?
सूरदास मित्वा नहिं भाषत, मोंहि रघुनाथ दुहाई॥

पूतना वध

कपट करि ब्रजहिं पूतना आई।

अति सुरूप, विष अस्तन लाए, राजा कंस पठाई।
मुख चूमति, अरु नैन निहारति, राखत कण्ठ लगाई।
भाग बड़े तुम्हरे नन्दरानी, जिहिं के कुंवर कन्हाई।
कर गहि छीर पियावति अपनौ, जानत केसव राई।
बाहर ह्वै कै असुर पुकारी, अब बलि लेहु छुड़ाई।
गई मुरछाई, परी धरनी पर, मनौ भुवंगम खाई।
सूरदास प्रभु तुम्हरी लीला, भक्तनि गाइ सुनाई॥
कर पग गहि अंगूठा मुख मेलत।

प्रभु पौढै पालनै अकेले, हरषि-हरषि अपने रंग खेलत।
सिव सोचत, विधि बुद्धि विचारत, बढ बाढयौ सागर जल झेलत।
विडरि जले घन प्रलय जानिकै, दिग पति दिग दंतनि समेलत।
मुनि मन भीत भए, मुव कंपित, सेष सकुचि सहसौ फन पेलत।
उन ब्रज वासिनी बातन जानी, समुझे सूर सकट पग ठेलत ॥

खीजत जात माखन खात।

अरुन लोचन, भौंह टेढो, बार बार जंभात।

कबहुं रुने झुन चलत घुटुरनि, धूरि धूसर गात।

कबहुं झुकि कै, अलक खैंचत, नैन जलभरि जात।

कबहुं तोतरे बोल बोलत, कबहुं बोलत तात।

सूर हरि की निरखि सोभा, निमिषत जतन मात।

बाल बिनोद खरो जिय भावत।
मुख प्रति बिम्ब पकरिवे कारन हुलसि घुटुरुवनि धावत।
अखिल ब्रह्मण्ड खण्ड की महिमा, सिसुता मांहि दुरावत।
सब्द जोरि बोल्यौ चाहत हैं प्रगट वचन नहीं आवत।
कमल नयन माँखन माँगत है, करि करि सैन वतावत।
सूरदास स्वामी सुख सागर, जसुमति-प्रीति बढ़ावत।
चलन चहत पाइनि गोपाल।

लए लाइ अंगुरी नन्दरानी, सुन्दरश्याम तमाल।

डगमगात गिरि परत पानि पर, भुज भ्राजत नन्दलाल।

जनु सिर पर ससि जानि अधोमुख, धकत नलिनि नमिनाल।

धूरि धौत तन, अञ्जन नैननि, चलत लटपटी चाल।

चरन रनित नूपुर धुनि, मानौ विहरत बाल मराल।
लट नटकनि सिर चाल चखौड़ा, सुठि सोभा सिसु भात।
सूरदास ऐसो सुख निरखत, जग जीजै बहुकाल ॥

महाकवि सूरदास की कविता के कठिन शब्दों का अर्थ:—

उधारौ=उद्धार करो। पावन=पवित्र। छुद्र (सं० क्षुद्र) नीच। विरद=पदवी, (उपाधि)। गौतम की तिय अहिल्या। गनिका=वेश्या। हुतौ=था। चारि पदारथ=धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। निठुर (सं० निष्ठुर) कठोर। चरनोदक=(सं० चरणोदक) चरणों का जल। दुरइयै=छिपावें। तम=अन्धकार। झर=ज्वाला। कलत्र=पत्नी। बिसरावै = भूल जावें। छीर= (सं० क्षीर) दूध। बरूथ=सेना, दल। जूथ=(सं० यूथ) झुण्ड। पठावौं=भेजूं। पौन दूत=(सं० पवन दूत) श्री हनुमान। मात=समाता। पैठि = प्रविष्ट होकर। संकटाई = संकट। धरनी=(सं० धरणी) पृथ्वी। अलक=केश, बाल। नूपुर= पाजेब पैरों का आभूषण। मराल=हंस।

भक्ति-काव्य

मीरा (१५७३—१६३०)

घड़ी एक नहीं आवड़े, तुम दरसण बिन मोय।
तुम हो मेरे प्राण जी, कासूं जीवण होय?
धान न भीवे, नीन्द न आवे, विरह सतावे मोय।
घायल सी घूमत फिरूं, रे मेरा दरद न जाणे कोय।
दिवस तो खाय गमायो, रे, रैण गमाई सोय।

जो मैं ऐसा जानती, रे, प्रीति किये दुःख होय।
नगर ढिंडोरा फेरती, रे, प्रीति करो मत कोय।
पन्थ निहारूं डगर बुहारूं, ऊबी मारग जोय।
"मीरा" के प्रभु कब रे मिलोगे? मिलयाँ सुख होय॥

देखो सइयाँ, हरि मन काठ कियो।
आवन कहि गयो अजहुं न आयो करि करि बचन गयो।
खान-पान, सुध-बुध, सब बिसरी, कैसे करि मैं जियों॥
वचन तुम्हारे तुमहिं बिसारे, मन मेरो हर लियो।
"मीरा" कहे प्रभु गिरधर नागर तुम बिन फाटत हियो॥

मन रे परस हरि के चरन।
सुलभ सीतल कमल कोमल, त्रिविध ज्वाला हरन।
जे चरन प्रह्लाद परसे, इन्द्र पदवी धरन॥
जिन चरन ध्रुव अटल कीन्हो, राखि अपने सरन।
जिन चरन ब्रह्माण्ड भेट्यो, नख सिखौ श्री भरन॥
जिन चरन प्रभु परस लीन्हें, तरी गौतम धरन।
जिन चरन काली हि नाथ्यो, गोप लीला करन॥
जिन चरन धार्‌यो गोवर्धन, गरव मघवा हरन।
दास 'मीरा' लाल गिरधर, अगम तारन तरन॥
जब से मोहि नन्द नन्दन दृष्टि पड़्यो पाई।
तब से परलोक लोक कछू न सोहाई॥
मोरन की चन्द्र कला सीस मुकुट सोहै।
केसर को तिलक भाल तीन लोक मोहै॥

कुण्डल की अलक, झलक कपोलन पर छाई।
मानो मीन सरवर तजि, मकर मिलन आई॥
कुटिल भृकुटि, तिलक भाल, चितवन में टौना।
खञ्जन अरु मधुप मीन, भूले मृग छौना॥
सुन्दर अति नासिका, सुग्रीव तीन रेखा।
नटवर प्रभु वेष धरे, रूप अति विशेषा॥
अधर विम्ब, अरुन नयन, मधुर नन्द हाँसी।
दसन दमक दाडिम दुति, चमके चपलासी॥

स्वामी सब संसार के हो साँचे श्री भगवान।
स्थावर जंगम, पावक पाणी, धरती बीच समान॥
सब में महिमा तेरी देखी, कुदरत के कुरबान।
सुदामा के दारिद खोये, बारे की पहचान॥
दो मुट्ठी तन्दुल की चावी, दीनो द्रव्य महान।
भारत में अर्जुन के आगे आप भये रथवान॥
उन ने अपने कुल को देखा, छुट गये तीर कमान।
ना कोई मारे, न कोई मरता, तेरा यह अज्ञान॥
चेतन जीव तो अजर अमर है, यह गीता को ज्ञान।
मुझ पर तो प्रभु किरपा कीजे, बन्दी अपनी जान॥
'मीरा' गिरधर सरण तिहारो लगै चरण में ध्यान।
मेरा बेड़ा लगाय दीजो पार, प्रभु अरज करूं छूं॥
या भव में मैं बहुत दुःख पायो, संसा सोग निवार।
अष्ट करम की तलब लगी है, दूर करो दुखयार॥

यों संसार सब बह्यो जात है, लख चौरासी धार।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, आवागवन निवार॥

मेरो तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई॥
तात मात भ्रात वन्धु आपनो न कोई।
छांडि दई कुल की कानि काह करि है कोई॥
सन्तन ढिग बैठि बैठि लोक लाज खोई।
चुनरी के लिये टूक टूक आप लीन्ह लोई॥
मोती मूंगे उतार बन-माल पोई।
अंसुवन जल सींचि-सींचि प्रेम बेलि बोई॥
अब तो बेलि फैलि गई आनन्द फल होई।
भगति देखि राजि हुई, जगत देखि रोई।
दासी मीरा लाल गिरधर तारो अब मोंही॥

म्हारो जनम मरण को साथी,
थांने नहिं बिसरूं दिन राती॥

तुम देख्यां बिन कल न पड़त है जानत मेरी छाती।
ऊंची चढ़ चढ़ पन्थ निहारूं रोय रोय अँखिया राती।
यो संसार सकल जग झूठो झूठा कुलरा नाती।
दोड़ कर जोड़यां अरज करत हूँ सुण लीज्यो मेरी बाती।
यों मन मेरो बड़ा कुचालो ज्यूं मदमातो हाथी।
सतगुरु दस्त धर्यो सिर ऊपर आँकुस दे समझाती।

पल पल तेरा रूप निहारूं, निरख निरख सुख पाती।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरणाँ चित राती॥

हेरी मैं तो दर्द दिवाणी।
मेरा दरद न जाणै कोई॥

घाइल की गति घायल जाणै की जिण लाई होइ।
जौहरी की गति जौहरी जाणै, की जिन जौहर होइ॥
सूली ऊपर सेज हमारी, सोवण किस विध होइ।
गगन मंडल पै सेज पिया की, किस विध मिलणा होइ॥
दरद की मारी बन बन डोलूं, वैद मिल्यानहिं कोइ।
मीरा की प्रभु पीर मिटैगी, जब वैद संवलिया होइ॥

बसौ मेरे नैनन में नन्दलाल।

मोहनि मूरती साँवरि सूरत, नैना बने विसाल।
अधर सुधारस मुरली राजति उर वैजन्ती माल।
छुद्र घंटिका कटितट सोभित नुपुरसबद रसाल।
'मीरा' प्रभु संतन सुखदाई, भगत बछल गोपाल॥
राम मिलणरो घणो उमायो, नित उठ जोऊं बाटडियां।
दरसण बिन मोहि पलन सुहावे, कल न पड़त आँखडियां।
तलफ तलफ के बहु दिन बीते, बीते, पड़ी बिरह की फाँसडियाँ
अब मो वेगि दया कर साहिब, मैं हूं तेरी दासडियाँ।
नैण दुखी दरसण को तिरसे, नाभिन बैठे साँसड़ियां।
रात दिवस यह आरत मेरे, कब हरि राखे पासड़ियाँ।
लगी लगण छूटण की नाहीं, कब क्यों कीजै आटड़ियाँ।
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर, पूरो मन की आसड़ियाँ।

पायो जी मैंने नाम रतन धन पायो।
वस्तु अमोलक दी मेरे सतगुरु, किरपा कर अपनायो।
जनम जनम की पूंजी पाई, जग में सभी खोवायो।
खचै नहिं कोई चोर न लेवे, दिन दिन बढ़त सवायो।
सत की नाव खेवटिया सतगुरु, भवसागर तर आयो।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, हरख हरख जस गायो॥

करम गति टारे नाहिं टारै।

सतवादी हरिचंद से राजा, नीच घर नीर भरे।
पांच पाण्डु अरु कुन्ती द्रोपति, हाड़ हिमालय गरे।
जज्ञ किया बलि लेण हूं द्रासन, सो पाताल धरे॥
'मीरा' के प्रभु गिरधर नागर विष से अमृत करे॥

नहिं ऐसो जन्म बारम्बार।

क्या जानूं कछु पुन्य प्रकटे, मानुसा अवतार।
बढ़त पल-पल घटत छिन छिन, चलत न लागै बार।
बिरछ के ज्यों पात टूटे, लागे नहिं पुनि ड़ार॥
भौ सागर, अतिजोर कहिये, विषय ओखी धार।
सुरत नर बाँधे वेड़ा, वेगि उतरै पार॥
साधु सन्तानो ते महंता, चलत करत पुकार।
"दास मीरा" लाल गिरिधर जीवना दिन चार॥

मीरा की कविता के कठिन शब्दों का अर्थ:—

ढ़िग=समीप। मोंही=मुझको। म्हारो=हमारा। थाने=तुमको। बिसरूं=भूलूं। कल=चैन। राती=लाल। कुलरा

नाती = सम्बन्धी। बाती = बात। मदमातो = मस्त। दस्त (फारसी) = हस्त (संस्कृत, हाथ। निहारूं = देखूं। चितराती = चित्त रंगा हुआ है। दिवाणी = पागल। गगन मण्डल = आकाश मण्डल। संवलिया = घनश्याम = कृष्ण। अधर सुधारस = अधर = निचला होंठ = सुधारस = अमृत का रस। कटि = कमर। नूपुर = पैरों का भूषण। रसाल = रस उत्पन्न करने वाला। भगत बछ्छत = भक्तवत्सल = भक्तों को प्रेम करने वाले। आँखड़ियाँ = आँख। सांसड़ियाँ = सांस। फांसड़ियाँ = फाँसी। आटडियाँ अटकाव = देर। आसड़ियाँ = आशा। भवसागर = संसार रूपी समुद्र। बिरछ = वृक्ष। जीवण = जीवन। रैण = रैन = रात्री,। त्रिविध ज्वाला = तीन प्रकार के दुःख, आध्यात्मिक, आधिभौतिक और अधिदैविक।

परसि = स्पर्श करने से। मघवा = इन्द्र। कपोलन = गाल। मीन = मछली। मकर = मगरमच्छ। टौना = जादू। खञ्जन = खञ्जरीट पक्षी। मृग छौना = मृग का बच्चा। दसन = (सं० दशन) दान्त। चपला = बिजली।

रहीम

(१६१०—१६८३)

अगर बेलि बिन मूल की, प्रति पालत है ताहि।
रहिमन ऐसे प्रभुहिं तजि, खोजत फिरि एकाहि ॥१॥
अनुचित उचित रहीम लघु, करहिं बड़ेन के जोर।
ज्यों ससिके संयोग तैं, पचवत आगि चकोर ॥२॥

अब रहीम मुसकिल पड़ी, गाढे दोऊ काम।
साँचे को तो जग नहीं, झूठे मिलै न राम ॥३॥

अमी पिया वत मान बिन, रहिमन मोंहि न सुहाय।
प्रेम सहित मरि वो भलो, जो विष देह बुलाइ ॥४॥

आप न काहू कामके, डार पात फल मूर।
औरन को रोकत फिरैं, रहिमन कूर बबूर ॥५॥

कदली सीप भुजंग मुख, स्वाति एक गुन तीन।
जैसो संगति बैठिए, तै सोई फल दीन ॥६॥

कहि रहिम सम्पतिसगे, बनत बहुत बहु रीति।
विपत्ति कसौटी जे कसे, तेई साँचे मीत ॥७॥

कहु रहीम कैसे बनै, बेर केर को संग।
वे ड़ोलत रस आपने, उनके फाटत अंग ॥८॥

रहिमन जिह्वा बावरी, कहि गइ सरग पताल।
आपु तौ कहि भीतर भई, जूती खात कपाल ॥९॥

कौन बड़ाई जलधि मिलि, गंग नाम मो धीम।
काकी महिमा नहीं घटी, पर घर गए रहीम ॥१०॥
खीरा सिरते काटिए, मलिए लोन लगाइ।
रहिमन करुए मुखन को, चाहियत यही सजाइ ॥१ ॥
गहि सरनागत रामकी, भव सागर की नाव।
रहिमन जगत-उधार कर, और न कुछु उपाय ॥१२॥
छमा बड़ेन को चाहिए, छोटेन को उतपात।
का रहीम हरि को घट्यो, जो भृगु मारी लात ॥१३॥

जब लगि वित्तन आपने, तब लगि मित्त न कोय ।
रहिमन अम्बुल अम्बुविन, रविनाकर रिपु होय ॥१४॥
जे गरीब पर हित करैं, ते रहीम बड लोग ।
कहा सुदामा बापरो, कृष्ण मिताई जोग ॥१५॥
जेहि रहीम चित आपनो, कीन्हो चतुर चकोर ।
निसी वासर लागो रहै, कृष्णचन्द्र की ओर ॥१६॥
जेहि अंचल दीपक दुरा, हन्यो सो ताहि गात ।
रहिमन असमय के परे, मित्र सत्रु ह्वै जात ॥१७॥
जैसी परे सो सहि रहै, कहि रहीम यह देह ।
धरती ही पर परत सब, सीत धाम अरु मेह ॥१८॥
जो रहीम ओछो बैठे, तौ तिलही इतराय ।
प्यादे से फरजी भयो, टेढो टेढो जाय ॥१९॥
जो विषया सन्तन तजी, मूढ ताहि लपटात ।
ज्यों नर डारत वमन करि, स्वान स्वादसो खात ॥२०॥
जो रहीम उत्तम प्रकृति कहा करि सकत कुसंग ।
चन्दन विष व्यापत नहीं लपटे रहत भुजंग ॥२१॥
जो बड़ेन को लघु कहो, नहिं रहीम घटि जाहिं ।
गिरिधर मुरली धर कहे, दुःख कछु मानत नाहिं ॥२२॥
जो पुरुषार्थ ते कहूँ, सम्पति मिलती रहीम ।
पेट लागि बैराट घर, तपत रसोई भीम ॥२३॥
जो रहीम विधी बड़ किए, को कहि दूषन काढि ।
चन्द्र दूवरो कूबरो, तऊ नखत तैं बाढि ॥२४॥

टूटे सुजन मनाइए, जो टूटैं सो बार।
रहिमन फिरि फिरि पोहिए, टूटे मुकता हार ॥२५॥
तनु रहीम है कर्म बस, मन राखो वहि ओर।
जल में उलटी नाँव ज्यों, खैंचत गुन के जोर ॥२६॥
तब हीं लग जीवो भलो, दीयो परै न धीम।
बिन दीयो जीवो जगत, हमहिं न रुचै रहीम ॥२७॥
तरवर फल नहीं खात हैं, सरवर पियहिं न पान।
कहि रहीम, पर काज हित, सम्पति संचहिं सुजान ॥२८॥
दादुर मोर किसान मन, लग्यो रहै घन माहिं।
पै रहीम चातक रहनि, सर वरि कोउ नाहिं ॥२९॥
दिव्य दीनता के रसहिं, का जाने जग अंधु।
भली विचारी दीनता, दीन बन्धु से बन्धु ॥३०॥
धनि रहीम गति मीनकी, जल बिछुरत जिय जाय।
जियत कंज तजि अन्त वसि, कहाँ भौंर को भाय ॥३१॥
धनि रहीम जल पंककी, लघु जिय पियत अघाइ।
उदधि बड़ाई कौन है, जगत पियासो जाइ ॥३२॥
धूरि धरत नित सीस पै, कहु रहीम केहि काज।
जेहि रज मुनि पतनी तरी, सो ढूंढत गजराज ॥३३॥
निज कर क्रिया रहीम कहि, सुधिभावी के हाथ।
पाँसै अपने हाथ में, दाँव न अपने हाथ ॥३४॥
पात पात को सींचिवो, बरी बरी को लौन।
रहिमन ऐसी, बुद्धि तैं, काज सरेगो कौन? ॥३५॥

पांच रूप पाण्डव भए, रथ वाहक नलराज।
दुरदिन परै रहीम कहि, बडेन किये घटि काज ॥३६॥
बडे दीन को दुख सुने, लेत दया उर आनि।
हटि हाथी सों कब हुती, कहु रहीम पहिचानि ॥३७॥
बसि कुसंग चाहत कुसल, यह रहीम अपसोस।
महिमा घटी समुद्र की, रावन बसे परोस ॥३८॥
बिगरी बात बनै नहीं, लाख करौ किन कोइ।
रहिमन बिगरे दूध के, मथेन माखन होइ ॥३९॥
मथत मथत माखन रहै, दही–मही बिलगाइ।
रहिमन सोई मीत है, भीर परे ठहराइ ॥४०॥
यों रहीम सुख होत है, बढ़त देखि निज गोत।
ज्यों बड़री ऊंखियाँ निरखि, आँखिन को सुख होत ॥४१॥
यों रहीम सुख होत है, उपकारी के अंग।
बाँटन वारे के लगै, ज्यों मेंहदी को रंग ॥४२॥
रहिमन छोटे नर नसों, होत बड़ो नहिं काम।
मढ़ो दमा मो नहिं बनै, सौ चूहे के चाम ॥४३॥
रहिमन वे नर मर चुके, जे कहुँ माँगन जाहिं।
उनते पहिले वे मरे, जिन मुख निकसत नाहिं ॥४४॥
रहिमन देखि बडेन को, लघु न दीजिए डारि।
जहाँ काम आवे सुई, कहा करै नर नार ॥४५॥
रहिमन अंसु वा नयन ढरि, जिय दुःख प्रगट करेइ।
जाहि निकारो गेहतें, कसन भेद कहि देइ ॥४६॥
रहिमन असमय के परे, हित अनहित ह्वै जाइ।

वधिक वान सो मृग बध्यो, देतो रुधिर बनाई ।।४७।।
रहिमन धागा प्रेम को, मति तोरी चट काई ।
टूटे से फिरिना मिले, मिलै गांठि परिजाई ।।४८।।
रहिमन रिस को छांडिकै, करौ गरीबी भेस ।
मीठे बोलौ नै चलो, सबै तुम्हारो देस ।।४९।।

रहीम के कठिन शब्दों का अर्थ

बड़ेन के जोर=बड़ों की शक्ति पर। भुजंग=सांप। जलधि=समुद्र। काकी=किसकी। कदली=केला। जिह्वा=जीभ। भव-सागर=संसार रूपी समुद्र। अम्बुज=अम्बु जल में उत्पन्न होने वाला कमल। वापुरो=बेचारा। स्वान=कुत्ता। नखत=नक्षत्र, तारे। मुकता हार=मोतियों का हार। दीवो (श्लिष्ट) देना, दीवा। मीन=मछली। अधाइ = प्रसन्न होकर। मुनि पतनी (अहल्या) बधिक=शिकारी।

महाकवि भक्त रसखान— [१६४०—१६८५]

ग्वालन संग जैबो बन ऐबो सुगाइन संग।
हेरि तात गैयों हा हा नैन फरकत है।।
ह्याँ के गज मोती माल बारौं कुञ्ज मालन पै।
कुञ्ज सुधि आये, हाथ प्रान धरकत हैं।।
गोबर को गारो सुनौ, मोहि लगै प्यारो कहा।
भये महल सोने को जटत मरकत है।।

मन्दिर तें ऊंचे यह मन्दिर हैं द्वारिका के ।
ब्रज के खिरक मेरो हिये खिरकत हैं॥१॥

मानस हौं तो, वही रसखानि, बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पशु हौं तो कहा बसि मेरो, चरौं नित नन्द की धेनु मंझारन॥
पाहन हौं तो वही गिरि को, जो धरयो नर छत्र पुरन्नदर धारन ।
जो खग हों तो बसेरो करौं, नित कालिन्दी कूल कदम्ब की डारन॥२॥
ब्रह्म में ढूंढ्यो पुरानन गानन, वेद रिचा सुन्यो चौगुनो चायन।
देख्यो सुन्यो कबहुं न कितूं, वह कैसो सरूप औ कैसो सुभायन॥
टेरत हेरत हारि पर्यो 'रसखानि' बतायो न लोग, लुगायन ।
देखो दुरो वह कुञ्ज कुटीर में, बैठो पलोटत राधिका पायन ॥३ ॥
सोहत है चन्दवा सिर मौर के, जै सिए सुन्दर पाग कसी है ।
तै सिये गोरज भाल विराजती, जैसीहिये बनमाल लसी है ॥
'रसखानि' विलोकत बैरि भई, दृग मून्दि कै ग्वाल पुकारि हंसी है।
खोलिरी घूंघट खोलौं कहा वह, मूरति नैननि माँझ बसी है ॥४॥
सेस गनेस महेस दिनेस सुरेसहु जाहि निरन्तन ध्यावैं।
जाहि अनादि अनन्त अखण्ड, अछेद अभेद सुवेड़ बतावैं॥
नारद से सुक व्यास रहैं, पचिहरि तऊ पुनि पार न पावैं ।
ताहि अहीर की छोहरियाँ, छछिया भरि छाछ पै नाच नचावैं ॥५॥

दूध दुह्यो सीरो परयो, ताको न जमायो कर्यो ।
जामन दयो सो धर्यो धर्योही खटायगो॥
आन हाथ आन पाह, सब हीं के तब हीं के।
जब हीं के 'रस खानि' कानन सुनाइगो ॥

ज्यौं ही नर त्यौं ही नारी तैसी ये तरुन बारी।
कहिये कहा री सब ब्रज बिल लाइ गो॥
जानिये न आलि, यह छोहरा जसोमति को।
बाँसुरी बजाइगो कि विष बगराइगो ॥६॥

मेरे सुभाय चितैवे को माइ री, लाल निहारि कै बंसी बजाई।
वा दिन ते मोही लागो ठगौरी सी, लोग कहैं कोउ बावरी आई॥
यों 'रसखानि' घिर्यो सिगरो ब्रज, जानत वे कि मेरो जियराई।
जो कोउ चाहै भलौ अपनो तौ, सनेह न काहू सो कीजिये भाई॥७॥

दानी भये नये माँगत दान, सुनै जु पै कंस तो बन्धन जै हो।
रोकत हो वन में 'रसखानि' पसारत हाथ घनो दुःख मैं हो॥
टूटे धरा बछरादिक गोधन, जो धन है सो सबै धन दै हो।
जै है जो भूषन काहू सखी को, मोल छला के लला न बिकै हो॥८॥

काहू सो माई कहा कहिये, स हिये जू सोइ 'रसखानि' सहावैं।
नेम कहा जब प्रेम कियो तब, नाचिये सोई जो नाच नचावैं॥
चाहत हैं हम और क्या सखि, क्यों हूं कहूं प्रिय देख न पावैं।
चेरिया सों जु गोपाल रच्यो तो, चलोरी सबै मिलि चेरि कहावैं॥९॥

मोर पखा सिर ऊपर राखि हौं, गुञ्ज की माल गंर पहिरौंगी।
ओढि पितम्बर लै लकुटी, बन गोधन ग्वारिन संग फिरौंगी॥
भाव तो वोहि मेरो 'रसखानि' सो तेरे कहे सब स्वाँग करौंगी।
या मुरली मुरलीधर की अध रात धरी अध रात धरौंगी॥

खञ्जन नैन फंदे पिंजरा छबि नाहिं रहै थिर कै सहूं गाई।
छूटि गई कुल कानि सखी, 'रसखानि' लखी मुसकानि सुहाई॥

चित्त कढ़े से रहैं मेरे नैन, न नैन कढे मुख दीनि दुहाई।
कैसी करौं जिन जाव अती,सब बोलि उठै यह बावरी आई॥११॥
अति लोक की लाज समूह मैं घेरि कै,राखि थकी भव संकट सों।
पल में कुल कानि की मेंड़ नखी,नहिं रोकि सको पलके पटसों॥
रखखानि सो के तो उचाटि रही, उचटोन संकोच की औचटसों॥
अलि कोटि कियो हटकी न रही अंट की अंखिया लटकी लटसों-
॥ १२॥

कानन पै अंगुरी रहिवो, जबहीं मुरली धुनि मंद बजै है।
मोहनि तानन सों रसखानि, अटा चढ़ी, गोधन गैहै तो गैहै।
टेटि कहौं सिगरे वृज लोगनि, काल्हि कोऊ कितनो समुझै है।
भाइ री वा मुख की मुसकानि, सम्हारी न जैहैनजैहैन जै है॥१३॥

अबहीं गई खिरक गाय के दुहाइवे को।
बावरी ह्वै आई, ड़ारि दोहनि यो पाननि की।
कोऊ कहै छरी कोऊ भौन, घटी हरी कोऊ ,
कोऊ कहै मरी गति हरी अंखियानि की॥
सास व्रत ठानै नन्द बोलत सयानै धाइ;
दौरि दौरि जानै मानों खोरि देवतानि की।
सखी सब हंसै मुरझानि पहिचानि कहूं।
देखि मुसकानि वा अहीर रखखानि की॥ १४॥

छूटयो गेह काज लोक लाज मन मोहनी को।
छूटयो मन मोहन को मुरली बजाइयो।
देखो दिन ह्वै में रसखानि बात फैलि जै है।

सजनी, कहां लौं चन्द हाथ न दुराइवो।
कालिही कालिन्दी तीर देखो में अचानकही।
दो उन को दोउ मुरिमृदु मुसक्याइवो।
दोऊ परैं पैयाँ दोऊ लेत हैं बलैयाँ।
उन्हें भूल गई गैयां, इन्हे गागर उठाइवो॥ १४॥

या लकुटी और कामरिया पर राजतिहूं पुरकोतजि ड़ारौ।
आठहुं सिद्धि नवों निधी को सुख नन्द की गाइ चराइ बिसारौं।
'रसखानि' कबौं इन आँखिन सों व्रज को बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिन हूं कल धौत के धाम, करील के कुंजन ऊपर वारौं॥ १५॥

उनहीं के सनेहन सानी रहैं, उनहीं के जुनेह दिवानी रहैं।
उनहीं की सुनैं न औ बैन त्योंसैन, सो चैन अनेकन ठानीर हौं।
उनहीं संग डोलन में, रसखानि, सबै सुख सिंधु अघानी रहैं।
उनहीं विन ज्यों जल हीन ह्वै मीनसी, आँख मेरी अंसुवानी रहैं॥
॥ १६॥

महा कवि भक्त रसखान की कविता के कठिन शब्दों का अर्थ—

सुगाइन संग—सुन्दर गौओं के साथ। मरकत=बिल्लोर मणि कामरिया, कमलिया। तड़ाग=तालाब। कलधौत=सुवर्ण। पलोटन=दबा रहे हैं। कालिन्दी=यमुना। अंसुवानी, अश्रु युक्त। मुसकानि=प्रसन्नता। बगराइगो, विखेर गया। चितवै देखने। बावरी=पगली। एतिक=इतनी। छला=अंगूठी। गुंज=रत्ती। अधरान धरी=होंठो पर रक्खी हुई। कुलकानि=कुल की लज्जा।

श्री महाकवि केशव (१६१२-१६७४

लंकादहन

जटी अग्नि ज्वाला अटा स्वेत हैं यों।
शरत् काल के मेघ संध्या समै ज्यों ।
लगी ज्वाल धूमावली, नील राजैं ।
मनो स्वर्न की किंकिनी नाग साजैं ।
लसैं पीत छत्री मढ़ी ज्वाल मानौं ।
इक ओढ़नी लंक बच्छोज जानौ ।
जटैं जूद-नारी चढ़ी चित सारी ।
मनो चेटका मैं सती सत्व धारी ।
कहूं रैनि चारी, गहे ज्योति गाढ़े ।
मनो ईष रोषाग्नि में काम ड़ाढे ॥
कहूं कामिनी ज्वाल मालानि भोरैं ।
तजे लाल सारी अलंकार तोरैं ।
कहूं भौन-राने; रचे धूम छाहीं ।
ससी सूर मानो, लसे मेघ माहीं ।
जरैं सस्त्र साला, मिली गंध माला ।
मलै अद्रि मानो, लगी दाव ज्वाला ।
चली भागि चौहूं दिसा राजधानी ।
मिली ज्वाल माला फिरैं दुःख हानी ।
मनो ईस बाना वली, लाल लोलैं,
सबै दैत्य जायान के संग डोलैं ।

लंक लगाई दइ हनुमान विमान बचे अति उच्च हरनी है ।
पाचि फटैं उचटैं बहुधा मनि, रानी रटै बहुपानी दुखी है ।
कंचन को पघिल्यो पुर पूर; पयो निधि में पसरे ति सुखी है ।
गंग हजार मुखी गुनि–'कैसौ' गिरा मिली मानों अपार मुखी है ।

फुटकर कविताएँ

पण्डित पुत्र, सुधी पतिनी जु पति व्रत प्रेम परायन भारी ।
जानै सबै गुण, मानै सबै जग, दान विधान दया उर धारी ॥
'केशव' रोगन ही सो वियोग, संयोग सुभागन सो सुखकारी ।
साँच कहे, जग मांह लहे यश, मुक्ति यहै चहुं वेद विचारी ॥

छप्पय

धिक मंगन विन गुणहि, गुण सुधिक सुनत न रीझिय ।
रिझ सुधिक विन मौज, मौज धिक देत सुखी जिय ॥
दीवो धिक विन सांच, सांच धिक धर्म्म न भावै ।
धर्म सुधिक विन दया, दयाधिक अरि कहं आवै ॥
अरि धिक चित्र न सालई, चितधिक जहं न उदार मति ।
मति धिक 'केशव' ज्ञान बिनु ज्ञान सुधिक बिनु हरि भगति ॥

कवित्त

लूटिवे के नाते पाप पट्टनै तो लूटियत ।
तोरिवे को मोहतरु तोरि डारियतु है ।
घालिबे ते नाते, गर्व घालियत देवन के ।
जारिवे के नाते अधओघ जारियतु है ।

बाँधिवे के नाते ताल बांधिय ते 'केशोदास'।
मारिवे के नाते तौ दरिद्र मारियतु है।
राजा रामचन्द्र जू के नाम जग जीतियतु।
हारिवे के नाते आन जन्म हारियतु है।
हारिवे के नाते आन जन्म हारियतु है॥

राम वर्णन

कीन्हे छत्र छितिपति 'केशोदास' गणपति।
दसन वसन वसुमति कह्यो चारू है।
विधी कीन्हो आसन शरासन असम शर।
आसन को कीन्हो पाक शासन तुषारु है॥
हरि कीन्ही सेज, हरि प्रिया कियो नाक मोती।
हर कीन्हो तिलक हराहू कियो हारू है।
राजा दशरथ–सुत सुनो राजा रामचन्द्र।
रावरो सुयश, सब जग को शृंगारू है।

जरा वर्णन

विलोकी शिरोरूह श्वेत समेत तनोरुह 'केशव' यो गुण गायो।
उठे किधौं आयु की औधि के अंकुर शूल कि सुख समूल नशायो।
लिख्यो कि धौं रूप के पाणि पराजय रूप को भूप कुरूप लिखायो
जरा शर पञ्जर जीव जर्यो कि जरा जर कंवर सो पहिरायो॥
अभिराम सचिक्कन श्याम सुगंध हु धाम हुते जे सुभाइक के।
प्रतिकूल सबै हग शूल भये किधौं शाल शृंगार के धाइक के॥
निज दूत अभूत जराके किधौं अविताली जरा जन लाइक के।

सित केश हिये यहि वेश लसै जनु साइक अंतक नाइक के ॥
लसै सित केश शरीर सबै कि जरा जस रूपे के पानी लिखायो।
सुरूप को देश उदात कै कीलनि की लतु कै कै रूप नसायो ॥
जरैं किधौं 'केशव' व्याधिनिकी किधौं ओपिके अंकुर अंत न पायो।
जरा शर पञ्जर जीव जर्‌यो कि जरा जर क नर सो पहिरायो ॥

सम्पूर्ण वर्णन

हरिकर मण्डन सकल दुख खण्डन,
मुकुर महि मण्डन के कहन अखण्ड मति।
परम सुवास पुनि पीयूष निवास, परि,—
पूरण प्रकाश 'केशो दास' भू अकास गति ॥
वदन मदन कैसो श्री जू के सदन शुभ,
सोदर शुभोदर दिनेश जू के भिन्न अति।
सीता जी के मुख सुखमा के उपमा को सखि;
कोमल कमल नहिं अमल रजनि पति ॥

मण्डल वर्णन

मणिमय आल बाल थल ज जलज रवि,
मण्डल में जैसे मति मोहै कवितानि की।
जैसे सविशेष परिवेष में अशेष रेख,
शोभित सुवेष सोम सीमा सुखदानि की ॥
जैसे वंक लोचन कलित कर कंकणनि,
वलित ललित द्युति प्रकट प्रभानि की।

'केशो दास' तैसे राजै रास में रसिक राइ,
आस पास मण्डली विराजै गोपिकान की ॥

संग्राम वर्णन

शोणित सलिल नर वानर सलिल चर,
गिरि हनुमन्त बिष विभीषण डार्‌यो है।
चमर पताका बड़ी वाडवा अनल सम,
रोग रिपु जामवंत, 'केशव' विचार्‌यो है ॥
कजि सुर वाजि सुर गज से अनेक गज।
भरत सबन्धु इन्दु अमृत निहार्‌यो है!
सोहत सहित शेष रामचन्द्र कुश लव,
जीति कै समर सिंधु सांचे हू सुधार्‌यो है ॥

महा कवि केशव दास की कविता के कठिन शब्दों का अर्थ:-

अटा = अट्टालिका। अद्रि = पहाड़। कंचन = सोना। अघ-ओघ = पापों का समूह। मोहतरु = मोहरूपी वृक्ष। शरासन = धनुष। रावरो = महाराज का। शृंगार = आभूषण। शिरोरुह = बाल, केश। पाकशासन = इन्द्र, पाक = स्वर्गपर शासन करने वाला। तनोरुह = रोम। जरा = बुढापा। जर कंवर = वृद्धावस्था का कंवल। शोणित = खून। वंकलोचन = कुटिलनेत्र। शेष = लक्ष्मण (लक्ष्मण जी शेष के अवतार माने जाते हैं) वाड़वानल = समुद्रकी आग।

महाकवि भूषण [१६७०—१७७२]

शिवराज विजय से—

[१] तेरो तेज सरजा समत्थ ! दिन करसो है, दिन करसो है तेरे तेज के निकर सौ। भौं सिला भूवाल ! तेरो जस हिमकर सो है हिमकर सो है तेरे जस के अकर सो। 'भूषन' भनत तेरो हियो रतना करसो, रतना करौ है तेरे हिय सुख करसो। साहि के सपूत सिव साहि दानि ! तेरो कर सुरतरु सो है, सुर-तरु तेरे कर सो।

[२] इन्द्र जिमि जम्भ पर, बाड़व सुअम्भ पर रावन सदंभ पर रघुकुल राज है ! पौन बारि वाह पर, संभु रति नाह पर, जो सहस्र बाहु पर राम द्विजराज है। दावा द्रुम दण्ड पर, चीता मृग झुण्ड पर 'भूषन' वितुण्ड पर जैसे मृगराज है। तेज तम अंस पर कान्ह जिमि कंस पर त्यों मलिच्छ वंस पर सेर सिवराज है।

[३] साहि-तनै सरजा सिवा की सभा जामधि है, मेरुवारी सुरकी सभा को निदराती है। 'भूषन' भनत जाके एक २ सिखर ते केते धौं नदि-नद की रेल उतरति है। जोन्ह को हंसति जोयोति हीरा मनि मन्दिरन कन्दरन में छवि कुहू की उछरति है, ऐसो दुर्ग महावली को जामें नखतावली सो बहस दिपावली धरति है।

[४] जेते हैं पहार युत्र माहिं पारावार तिन सुनिकै अपार कृपा गहे सुख फैल है। 'भूषन' भनत साहित नै सरजा के पास

आइवे को चढ़ि उर हौंसति की ऐल है। किरपान वज्र सों विपच्छ कटिवे के डर आनि कै कितेक आये सरन की गैल है। मघवा मही मैं तेजवान सिवराज वीर कोट करि सकल सपच्छ कीए सैल हैं।

[५] तेरे ही भुजन पर भूतल को भार कहिवे को सेस नाग, दिग नाग हिमाचल है। तेरो अवतार जग पोषन भरन हार कछु करतार को न नामधि अमल है। साहिन में सरजा समत्थ सिवराज कवि 'भूषन' कहन जी वो तेरोई सफल है। तेरो करवाल करे म्लेच्छन को काल बिना काज होत काल बदनाम धरातल है।

❀ दोहे ❀

१ तिमिर वंस हर अरुन कर आयो सजनी भोर ?
सिव सरजा, चुप रहि सखी, सूरज कुल सिर मोर ॥
२ दुरगहि वल पंजन प्र यल सरजा जिति रन मोहिं।
औरङ्ग कहै दिवान सो सपन सुनावत तोहिं ॥
३ सुनिसु उजीरन यों कह्यो, सरजा सिव महाराज ?
भूषन कहि चक सकुचि नहिं सिकार मृगराज ॥
४ महाराज सिवराज तव सुवर धवल धुव कित्ति।
छवि छटान सो छुवति सी, छिति अंगन दिग भित्ति ॥
५ दुवन सदन सबके बदन सिव सिव आठो याम।
निज बचिवे को जपत जनु, तुट कौ हर को नाम ॥
६ आयो आयो सुनत ही सिव सरजा तुव नांव।

बैरि-नारि-दृग् जलन सों बूड़ि जात अरि गाँव ॥
७ सिव सरजा भारी भुजन भुव भरु धर्‌यौ स भाग ।
'भूषन' अब निहचित हैं सेस नाग दिग नाथ ॥
८ सिव सरजा तब दान को, करि कौ सकत बखान ।
बढ़त नदी गन दान जल, उमड़त नद गज दान ॥
९ बड़ो डील लख पील को सबन तज्यो बन थान ।
धनि सरजा तू जगत में ताक्यों हर्‌यो गुमान ॥

[१०] तुही साच द्विज राज है तेरी कला प्रमान ।
तो पर सिव किरपा करि जानत सकल जहान ॥

शिवा बावनी से:—

[१] ऊंचे घोर मन्दिर के अन्दर रहन वारी ऊंचे घोर मन्दिर के अन्दर रहाती है। कन्द मूल भोग करैं, कन्द मूल भोग करैं, तीन बेर खातीं सो तौ तीन बेर खाती हैं। भूषन सिथिल अंग भूषन सिथिल अंग बिजन डुलाती ते डब बिजन डुलाती हैं। 'भूषन' भनत सिवराज वीर तेरे त्रास नगन जड़ातीं ने वै नगन जड़ाती हैं।

[२] उर्तार पलंग ते न दियो है धरा पग ते उ सगवग निसिदिन चली जाती हैं। अति अकुलातीं मुरझाती न छिपाती गान बातन सोहाती बोल अति अनखाती है। 'भूषन' भनत सिंह साहि के सपूत सिवा तेरी धाक, सुने अरि नारी बिललाती हैं कोऊ करैं घाती कोऊं रोतीं पीटि छातीं धरे तीनि बेर खाती ने वें तीनि बेर खाती हैं।

[३] अन्दर ते निकसीं न मन्दिर को देख्यो द्वार बिन रथ पथ ते उघारे पाँव जाती हैं। हवा हू न लागती ते हवा ते विहाल भई, लाखन की भीर में सम्हारतीं न छाती हैं। 'भूषन' भनत सिवराज तेरी धाक सुनी हया दारी चीर फार मन झुंझलाती हैं। ऐसी परी नरम हरम बादसाहन की नास पाती खाती ते बनासपाती खाती हैं।

[४] अतर गुलाब रस चौवा घनसार सब सहज सुबासकी सुरनि बिसराती हैं। पल भर पलंग ते भूमि न धरति पांव, भूली खाल पान फिरैं बन विललाती हैं। 'भूषन' भनत सिवराज तेरी धाक सुनि हार हारा हार बार न सम्हारैं अकुलाती हैं। ऐसी परी नरम हरम बादसाहन की नासपाती खाती ते बनासपाती खाती हैं।

छत्र साल दशक से:—

[१] राजत अखंड तेज छाजत सुजस बड़ो, गाजत गायन्द दिग्ग जन हिय साल को। जाहि के प्रताप सो मलीन आफ़ताप होत ताप तजि दुजन करन बहुख्याल को। साज सजि गज तुरी पैदर कतार दीन्हें भूषन, भनत ऐसो दीन प्रतिपाल को। और राव राजा एक मन में न ल्याऊं अब साहू को सराहौं कै सराहौं छत्र साल को।

[२] वड़ी औंड़ी उमड़ी नदी सी फौज छेकी जहाँ मेंड बेडी छत्रसाल मेरु से कवरे रहे। चम्पति के चकवै भयो घमासानी बैरी मलियै मसान आनि सौंहें जे अरे रहे ॥ 'भूषन' भनत

भकरुंड रहे रुण्ड मुण्ड, भव के भुसुण्ड तुण्ड लोह से भरे रहे। कीन्हों जस पाठ हर पठने टे ठाठ पर काठलौं निहारे कोस साढलौं डरे रहे।

कठिन शब्दों के अर्थ:—

रतनाकर = समुद्र, रतिनाह = रतिनाथ = कामदेव।

ध्रिज = ध्यज। से = पंखा = बेर (बद्रीफल) बार। गयन्द = हाथी, जम्भ, महिषासुर का,पिता औड़ो = गंभीर, भारी। मेड़वेड़ी हद्दबाँधा रोका। चक्कवै चक्रवर्ती, सौंहै = सामने भक-एकाएक। रुंड-धड़ कबन्ध। तुण्ड-तलवार का अग्रभाग। कीन्हो जस पाठ प्रशंसा करने लगे। काठलौं--निश्चल, निस्तब्ध। आफताब [आफ़ताब] सूर्य। तुरी = घोड़ा।

महाकवि बिहारी (१६६०—१७२०)

अनियारे दीरघ दृगनि, किती न तरुनि समान।
वह चितवनि औरे, कछू जिहि बस होत सुजान ॥१॥
कंज-नयनि गंजन किये, बैठी ब्यौरति बार।
कच अंगुरिन बिच दी दै चित नति नन्द कुमार ॥२॥
या भव पारावार को, उलंघि पार को जाय।
तिय छवि छाया ग्राहिनी, गहै बीच हीं आय ॥३॥
जो वाके तन की दशा देख्यो चाहत आप।
तौ बलि नैकु बिलोकिए चलि औचक चुपचाप ॥४॥
दृग उरझत टूटत कुटुम जुरत चतुरचित प्रीति।

परति गाँठ दुरजन हिए, दई नई यह रीति ॥५॥
रह्यौ ऐञ्च अन्त न लह्यौ, अवधि-दुसासन वीर।
आली बाढत विरह ज्यौं, पांचाली कौ चीर ॥६॥
कहत सबै बैंदी दिए, आँक दस गुनौ होत।
तिय लिलार बैंदी दिए, अगनित बढ़त उदोत ॥७॥
भूषन भार संभारि है क्यौं यह तन सुकुमार।
सूधे पांय न धर परत, सोभा ही के भार ॥८॥
सगरब गरब खींचै सदा, चतुर चितेरे आय।
पर वाकी बाँकी अदा, नेकु न खींची जाय ॥९॥
कहा लडै ते दृग करे, परे लाल बेहाल।

कहुं मुरली, कहुं पीतपट, कहुं मुकुट वनमाल ॥१०॥
कुटिल अलक छुटि परत मुख, बढ़िगौ इतौ उदोत।

वंक बिकारी देत ज्यौं, दाम रुपया होत ॥११॥
को हर सी एड़ीन की लाली देखि सुभाही।

पाय महावर देन कौ, आप भई बे पाय ॥१२॥
किती न गोकुल कुल बधू काहि न केहि सिख दीन।
कौने तजी न कुल गनी ह्वै मुरली सुरधीन ॥१३॥
हौं हीं बौरी बिरह बस कै बौरौं सब गाम।

कहा जानिये कहत है, ससिहि सीत करं नाम ॥१४॥
चिर जीवौ जोरी जुरै, क्यों न सदेह सनेह गम्भीर।
को घटिये वृष भानुजा, वे हलधर के वीर ॥१५॥
औधाई सीसी सुलखि, विरह बरति बिललात।

बिच ही सूख गुलाब गौ, छीटों छुई न गान ।।१६।।
लाज लगाय न मान हीं, नैना यों बस नाहिं ।
ये मुंह जोर तुरंग लौं ऐंचत हू चलि जाहिं ।।१७।।
पत्रा ही तिथि पाइयतु, वा घर के चहुं पास ।
नित प्रति पुन्योई रहै, ओप उजास ।।१८।।
मरन भलौ बस विरह में, यह विचार चित्त जोय ।
भर छुटै दुःख एक कौ, बिरह दुहूं दुःख होय ।।१९।।
मङ्गल बिन्दु सुरंग, ससि मुख केसर आड़ गुरु ।
इक नारी लहि संग, रसमय किय लोचन जगत ।।२०।।
मैं लखि नारि ज्ञान, करि राख्यो निरधार यह ।
वह ई रोग निदान, वहै वेद औषध वहै ।।२१।।
बिरह-बिथा-जल-परस बिन बसियत मोहिय ताल ।
कछु जानत जल थम्भ विधि दुरजोधन लौं लाल ।।२२।।
बसि सकोच-दस बदन बस साँच दिखावति बाल ।
सिय लौं सोधति तिय तनहि लगनि अगनि की ज्वाल ।।२३।।
दुसह दुराज प्रजानि कौं क्यौं न बढ़ै दुःख द्वन्द ।
अधिक अन्धेरो जग करत, मिलि मावस रवि चन्द ।।२४।।
अज्यौं तर पौना ही रह्यौ, श्रुति सेवत इक अंग ।
नाक बाल बेसर लह्यौ, बसि मुक्तन के संग ।।२५।।
जोग जुक्ति सिखई सबै मनो महामुनि मैन ।
चाहत पिय अद्वैतता, कानन सेवत नैन ।।२६।।
जगत जतायो जिहि सकल सो हरि जान्यौ नाहि ।

ज्यौं आँखिनि सब (जग) देखिये आँखिन देखी जाहिं ।।२७।।
पनवारी माला पकरि और न कछू उपाय ।
तरु (रि) संसार पयोधि कौं हरि नामै करिनाव ।।२८।।
ज्यौं कर त्यौं चुंहटी (चुटकी) ज्यौं चुंहरी त्यौ नारी ।
छ विसौं गनिसी लै चलति चातुर कातन्न हारि ।।२६।।
ओठ ऊचै हाँसी भरी दृग् भौंहनि की चाल ।
मोमन कहा न पी लियौ पियत तमाखू (कू) लाल ।।३०।।
कहा कहौं वाकी दसा हरि (प्रिय)प्रान नि के ईस ।
विरह ज्वाल जरिवौ लखै, मरिवौ भयो असीस ।।३१।।
गुडी उड़ी ल खिलाल की, अंगना आंगन माह ।
बौरी लौं दौरी फिरै, छुवत छवीली छाँह ।।३२।।
मोर मुकुट की चन्द्रिका, यों राजत नन्द नन्द ।
मनु शशि शेखर को अकस किय शेखर शत चन्द ।।३३।।
मकरा कृत गोपाल के कुण्डल सोहत कान ।
धर्यो मनो हिय घर समए, ड्योढ़ी लसत निशान ।।३४।।
कहा लडै ने द्रग करै, परे लाल बे हाल ।
कहुँ मुरली, कहुँ पीत पट, कहुँ मुकुट वनमाल ।।३५।।
चित वन भोरे भाय की, गोरे मुख मुसक्यान ।
लगनि लटकि आली गरे चित खट कत नित आन ।।३६।।
कोटिय तन कोऊ करो तन की तपत न जाय ।
जौं लगि भीजै चीर लौं, रहैं न यों लपटाय ।।३७।।
तजो आंच अति विरह की, रह्यो प्रेमरस भीज ।
नयनिके मग जल बहै, हियौ पसीज पसीज ।।३८।।

छिप्यो छबीलो मुख लसे, नीले अंचल चीर !
मनो कलानिधि झलमले, कालिन्दी के नीर ॥३९॥
पहरन भूषण कनक के, कहि आवत इहि हेत।
दर्पन के से मोरचे, देह दिखाई देत ॥४०॥
बैठी रही अति सघन वन, पैठि सदन मन माहिं।
निरखि दुपहरी जेठ की, छाहौं चाहत छांहि ॥४१॥
हठ न हठीली कर सके, इह पाव स ऋतुपाय।
आ र गांठ छुटि जाय त्यों, मान गाँठि छुट जाय ॥४२॥
मरत प्यास पिंजरा पर्यो सुआ समय के फेर।
आदर देदे बोलिअत बायस बलि की बेर ॥४३॥
को छुट्यो इहि जाल परि कत कुरंग अकुलाय।
ज्यों ज्यों सुरझ भज्यो चहे त्यों त्यों उरभयो जाय ॥४४॥

कठिन शब्दों के अर्थः—

चितवनि = दृष्टि। कंजनयनि = कमल नयन। भव पारावार = संसार रूपी समुद्र। कुटुय = कुटुम्ब। नैकु = जरा। रह्यौ रोंच = खैंचता रहा। लिलार = (सं,ललाट) मस्तक। बन म ल = वन-नामक पुष्पों की माला। वृषभ + अनुजा, (गौ) बैलकी छोठी बहिन = दूसरी और वृषभानु की पुत्री। तुरंग = घोड़ा। श्र ति = वेद-और कान। नाक = स्वर्ग और प्राणेन्द्रिय। मैन = कामदेव। कानन वन और कान। शशि शेखर = शशि भूषण = शिव। कलानिधि = चन्द्रमा। कालिन्दी = यमुना। कुरंग = हिरण। उरभयो जाय = फंसा जाय।

महाकवि वृन्दा १७४२

श्री गुरुनाथ प्रभाव तैं होत मनोहर सिद्धी।
घन तैं ज्यौं तरु बेलि दल फूल फलन की बृद्धि ॥१॥
तीकी पै फीकी लगै, बिन अवसर की बात।
जैसे बरतन युद्ध में रस सिंगार न सुहात ॥२॥
फीकी पैनी की लगै कहिये समय विचारि।
सब को मन हरषित करै, ज्यौं विवाह में गारि ॥३॥
जो जाकौ गुन जानहिं सो तिहिं आदर देत।
कोकिल अम्ब ही लेत हैं काग निबौरी लेत ॥४॥
कहा होय उद्यम किए, जो प्रभु ही प्रतिकूल।
जैसे उपजै खेत कौं करै सलभ निरमूल ॥५॥
जाही ते कछु पाइयै, करियै ताकी आस।
रीते सर बर पै गए कैसे बुझत पियास ॥६॥
रस अनरस समझै न कछु पढै प्रेम की गाथ।
बीछु मंत्र न जानई साँप पिटारे हाथ ॥७॥
अपनी पहुंच विचारिकै करतब करियै दौर।
तेते पाँव पसारियै जेती लाम्बी सौर ॥८॥
ओछे नर की प्रीति की दीनी रीति बताय।
जैसे छीलर ताल जल घटत घटत घटि जाय ॥९॥
रहे समीप बड़ेन के होत बड़ो हित मेल।
सब ही जानत वढत है, वृक्ष बराबर बैल ॥१०॥
फेर न ह्वै है कपटसों जो कीजै व्यौपार।

जैसे हाँडी काठ की चढ़ै न दूजी बार ॥११॥
नैना देत बताय सब हिय कौ हेत अहेत।
जैसे निरमल आरसी भली बुरी कह देत ॥१२॥
अति परिचै तैं होत है, अरुचि अनादर भाय।
मलयागिरि की भीलनी, चन्दन देत जराय ॥१३॥
सबै सहायक सबल के, कोउ न निबल सहाय।
पवन जगावत आग कौं, दीपहिं देत बुझाय ॥१४॥
जो जेहि भावै सो भलौ, गुन को कछु न विचार।
तज गज मुक्ता भीलनी, पहरति गुंजा हार ॥१५॥
एक भलै सबकौ भलौ, देखौ सबद विवेक।
जैसे सत हरिचन्द के उधरै जीव अनेक ॥१६॥
एक बुरे सब कौ बुरौ होत सबल के कोप।
अवगुन अर्जुन के भयौ, सब छत्रिन को लोप ॥१७॥
मान होत है गुननि तें गुन बिन मान न होइ।
सुक सारी राखैं सबै काग न राखै कोइ ॥१८॥
आडम्बर तजि कीजियै गुन संग्रह चित चाय।
छीर रहिन न बिकै गऊ आनो घंट बंधाय ॥१६॥
जैसो गुन दीनौ दई, तैसो रूप निबन्ध।
ए दोऊ कहं पाइयै, सोनौ और सुगंध ॥२०॥
अपनी अपनी ठौर पर, सोभा लहत विसेष।
चरन महावर ही भलौ, नैनन अञ्जन रेख ॥२१॥
पर घर कबहुं न जाइयै, गए घटत है जोति।
रवि मंडल में जाति ससि छीन कला छवि होत ॥२२॥

या जग की बिपरीति गति, समुझी देखी सुभाय।
कहैं जनार्दन कृष्ण कौ, हर को शंकर नाँव ॥२३॥
कलुष भाव देखै जहाँ, उत्तम जनन रहाँय।
जैसे पावस तजि अनत, राजहंस उडिजाँय ॥२४॥
जिहि प्रसंग दूषन लगैं, तजिए ताकौ साथ।
मदिरा मानत है जगत, दूध कलाली हाथ ॥२५॥
करै न कबहूं साहसी, दीन हीन कौ काज।
भूख सहै पर घास कौं, नाहिं भखै मृगराज ॥३६॥
कहूं कहूं गुन तैं अधिक, उपजत द्रोष सरीर।
मीठी बानी बोलिकै, परत पींजरा कीर ॥४०॥
आए आदर ना करै, पीछे लेत मनाय।
आयौ नाग न पूजई, बाँबी पूजन जाय ॥४१॥
जैसो जैसो अधिक गुन, तैसो होय मिलाय।
अहि उर विष गल अनल चख, शिव ससि सीस बसाय ॥४२॥
दुष्ट न छाँडै दुष्टता, बड़ी ठौर हू पाय।
जैसे तज तन श्यामता, विष शिव कंठ बसाय ॥४३॥
कहा करै आगम निगम, जो मूरख समझै न।
दरपन कौ नहिं दोष कछु, अन्ध बदन देखै न ॥४४॥
गूढ मंत्र गुरु वे बिना कोऊ राखि सकै न।
धातु पात्र बिन हेम के बाघिन दूध रहै न ॥४५॥
देत न प्रभु कछु बिन दियै, दियै देत यह बात।
लै तन्दुल धन दुजहि मुनि, त्रिपत किये भखि पात ॥४६॥
जोरावर को होति है सब के सिर पर राह।

हरि रुक्मनि हरि लै गयो, देखत रहै सिपाह ॥४७॥
कहे वचन पलटे नहीं, जे सत पुरुष सधीर।
कहत सबै हरिचन्द नृप, भर्यो नीचं घर नीर ॥४८॥
जूवा खेलै होतु है, सुख सम्पति कौ नास।
राज कज नल ते छुट्यौ पाण्डव किय वनवास ॥४६॥
लोकन के अपवाद को, डर करिये दिन रैन।
रघुपति सीता परि हरी, सुनत रजक के बैन ॥५०॥
कहा बड़े छोटे कहा, जहं हित तहं चित लागि।
हरि भोजन किय विदुर घर, दु जोधन कूं त्यागि ॥५१॥
जाके संग दूषन दुरै, करिए तिहिं पहचानि।
जैसे समझै दूध सब, सुरा अहीरी हाथ ॥२६॥
मूरख गुन समझै नहीं, तौ न गुनी मैं चूक।
कहा घट्यो दिन को विभौ, देखै जो न उलूक ॥२७॥
साँच झूठ निरनै करै, नीति निपुन जो होय।
राज हंस बिन कौ करै, छीर नीर को दोय ॥२८॥
क्यों कीजे ऐसो जतन, जातैं काज न होय!
परबत पैं खोदे कुआ, कैसे निकसै तोय ॥२६॥
जो चाहै सोई करै, बड़े असंकित अंग।
सब के देखत नगन हर, धरत गौरि अरधंग ॥३०॥
बड़े सहज की बात तैं, रीझि देव वक सीस।
तुलसी दल तैं विष्णु ज्यौं, आक धतूरे ईस ॥३१॥
जदपि सहोदर होय तऊ, प्रकृत और की और।

विष मारै ज्वावै सुधा, उपजे एक ही ठौर ॥३२॥
सब ते लघु है माँगिवौ, जामैं फेर न सार।
बलि पै जाँचत ही भए, बावन तन करतार ॥३३॥
तिनके कारज होत हैं, जिनके बड़े सहाय।
कृष्ण पक्ष पाण्डव जयी, कौरव गये विलाय ॥३४॥
बड़े भार लै निर बहै, तजत न खेद विचारि।
शेष धरा धरि धर धरैं, अब लौं देत नडारि ॥३५॥
बिना सिखाए लेत है, जिहिं कुल जैसी रीति।
जनमत सिंहनि का तनय, गज पर चढ़त अभीति ॥३६॥
होय भले कै सुत बुरो, भलौ बुरे के होय।
दीपक कै काजर प्रगट, कमल कीच तैं जोय ॥३७॥
ठौर देखिकै हूजिये, कुटिल सरल गति आप।
बाहर टेढौ फिरत है, बाँबी सूधो साँप ॥३८॥

वृन्द की कविता के कठिन शब्दों का अर्थ :—

गारि=गाली। सलभ [सं० शलभ], टीडी [दल]। छीलर= थोड़े पानी वाला। हिय=हृदय। परिचै [सं० परिचय] मेल जोल। आडम्बर=दिखावा। महावर = मेंहदी के समान लाल रंग की वस्तु। अर्जुन= सहस्रार्जुन। ठौर = स्थान। जनार्दन मनुष्यों को पीड़ित करने वाला, नाग= साँप। दरपन= [सं० दर्पण] शीशा। आगम=शास्त्र। निगम= वेद। अपवाद=निन्दा। परिहरी=त्याग दिया। रजक=धोबी। अरधंग [सं० अर्धाङ्ग] आधे अंग में। सहोदर=सगा भाई। [सुधा=अमृत। तन्दुल=[सं० तण्डुल] चावल। तनय=पुत्र। बाँबी=साँप के रहने का स्थान।

कविवर आलम (१७१२—१७६१)

भंवर गीत

जाके जोग जुगिया जुगत ही सों जोग जागैं,
भरत संजोग बसि अलख अलेख है।
सनक सनन्द सनकादि सिव मुनिजन,
सारद नारद हू के लगत निमेष है ॥
'आलम' सुकवि आनि व्रज नर भेष धर्‌यो,
ध्यावत हौ जाको ताके नाहीं रूप रेख है।
निगम ते अगम सुगम करि जान्यो तुम,
निरगुन ब्रह्म सोई सगुन के भेष है ॥
सोई स्याम सुनहु अगाध कै समाधि ध्यावैं,
सोई स्याम रैनि जामे नित ही समानि है।

सोई स्याम पलक लगें तें स्याम ना ईठी में,
तनमय होत तब कत पछताति है ॥
'आलम' सुकवि कहै सोई स्याम बन घन,
तारनुते न्यारे नहीं कन विल लाति है।
तुम ही मैं स्याम तुम स्याम ही मैं रमिर ही,
बादि ही विकल विहवल भई जाति है ॥
कर्म को बियापी को है धर्म कै समाधि ध्यावै,
अयुके सुनावै सुतौ ब्रह्म की के नाम को।
कैसो जोग जुगति संजोग कैसो कहा जोग,
ज्ञान हू की गांठि कैली ध्यामन को धाम को ॥

'आलम' सुकवि हूहाँ वृन्दाबन चन्द कान्ह,
चित ये चकोर कहौ आतविस राम को।
जहाँ रस परस सरस मुरली की घोर,
तहाँ ऊधौ सगुन निगुन कौन कामको ॥
रुचिर बरन चीरु चन्दन चरचि सुचि,
सरदु को चन्द चाहि चितहिं धरत हैं।
विविध विलास वसि रास व्रजपति प्यारे,
तेहि ब्रज वतियाँ उचित उचरत हैं।
आलम सुकवि अब वैसे कान्ह ऐसे भये,
उनही लुभाने किधौं इतही ढ़रत हैं।
मधुवन बसत मधुर मुरली की धुन,
मधुप कबहुं माधौ सुरति करत है ॥
पतियाँ पठाये अश्रु पात नौ भैले पै होत,
बतियति विरह विनैबो कछु हांसी है।
'आलम' निरास वैन सुने कौन जोरै नैन।
हिय को कठिन ऐसो कौन ब्रजबासी ॥
ऊधौ यह सन्देसे जैये वाही चित चोर पैलै,
आयुन कठिन भये और को विसासी है।
यहाँ लौंन आवै नैकु बाँसुरी सुनावै आति,
विन सँगो कहा आये जो अविनासी है ॥

जमुना कुंज

अरविन्द पुंज गुंज ड़ोर भौंर ही व्रती,
हलोर और थोर ज्यों निसा चलत चन्दनी।

निकुंज फूल मौल बेलि छत्र छाँह से धरे,
तटी कलोल कोक पुंज सोक संक दंदनी ॥
आलम कवित्त चित्त रास के बिलासते,
प्रकास बन्दना कई बिलोकि बिस्ववंदनी ।
समीर मन्द मंद केलि कन्द दोष दंदयो,
अनंद नंद नंद के बिराजे हंस नन्दनी ॥

लता प्रसून डोल बोल कोकिला अलाप केकि ।
लोल कोक कण्ठ त्यों प्रचण्ड भृग गुंज की ।
समीर वास रास रंग रास के विलास बास ।
पास हंस नन्दिनी हिलोर केलि पुंज की ॥
'आलम' रसाल बन गान ताल काल सो ।
विहंग बाय वेगि चालि चित्त लाज लुंज की ।
सदा वसन्त हंत सोक ओक देवलोक ते ।
बिलोकि रीझि रही पाँति भान्ति सों निकुञ्ज की ॥

गङ्गा वर्णनः—

जौंहि भौंह भी जो आँखि ताकि है जुती जिये से ।
जीवी कहे ज्याइ है अमर पद आइलै ।
अम्बर पटनारे ते दिगम्बर बनै है तोहि ।
छलक छुआये, गज छाल तन छाइलैं ॥
'सेख' कहै आपी कोऊ जैनी है कि जापी वड़ो ।
पापी है तो नीर पैठि नागन लबाय लै ।
अंग बोरि गंग में निहंग ह्वै कै बेगि चलि ।

आगे आउ मैल धोइ बैल गैल लाइलै।
नीकेन्ताइ धोइ धूरि पैंठो नेकु बैंठो आनि।
धूरि जटि गई धूरि जटि लौं भवन में।
पैंन्हि पैंठो अम्बर सुनि कस्यो दिगम्बर ह्वै।
दृग देख्यो भाल में अचम्भो लाग्यो मन में॥
जैसो हर हिमकर धरे औ गरे गरल।
भारी घरु ड़रु बरु छाँडयो एक खन में।
देखे दुतिना परत पाप रेते पा परत।
सापरे ते सुरसरि सांप रेंगें तन में॥

देवी को कवित्त—

भौन दरस पुन्य-भौन मेरे नेरे आयो।
छत्र छांह परसन छत्रनि सो छत्रों हौं।
मंगला के मंगल ते मंगल अनेग भये।
हिए लाजराखी लाज याही काज नयो हौं॥
सरमानि 'सिख' ही सुसेप कीसी दीनी तुम।
रावरे सिखाये सिख ढिग आनि लयो हो।
दुर्गा देवी तेरे इ दया ते दुर्ग नांघि आयों।
पारवती तुम्हें सुमिरत पार भयो हौं॥

कृष्ण बाल लीला वर्णन—

पालन खेलत नन्द ललन छलन बलि।
गोद लेले ललना करति मोद गान हैं।
'आलम" सुकवि पल पल मैंया पावैं सुख

पोषति पीयूष सुकरत पय पान हैं ॥
नन्द सों कहत नन्द रानी हो महर! सत-
चन्द कीसी कलनि बढ़त मेरे जान हैं।
आह देख अनन्द से प्यारे कान्ह आनन में।
आन दिन, आन घटी आन छवि आन हैं।
ईहों दधि मधुर धरनि धर्यो छोटी खैं हैं।
धाम ते निकसि धौरी धेनु धाइ खोलि हैं।
धौरी लौटि ऐ हैं लपटे हैं लटकत ऐ हैं।
सुखद सुने हैं बैंन बतियाँ अमोलि हैं ॥
आलम सुकवि मेरे लालन चलन सीखैं !
बलन की बाँह ब्रज गलिनि में डोलि हैं।
सुदिन सुदिन दिन ना दिन गिनैंगी माई।
जा दिन कन्हैया मो सों मैंया कहि बोलि हैं ॥

महा कवि आलम की कविता के कठिन शब्दों का अर्थ

अलख = अलक्षित = जिस को हम देख न सकें। निमेष = झपकी, पल। विह्वल = व्याकुल। ढ़रत है = गिरते हैं = पिघलते हैं सुरति = याद, स्मरण करना, ध्यान करना। बिसासी = विश्वासी। अरविन्द = कमल। हंसनन्दनी = यमुना। लोल = चञ्चल जीबी = जीभ। धूरि जटी = शिव। मंगला = पार्वती। हिंगलाज = दुर्गा। कलनि = कलाएं। धौरी = कपिला।

महाकवि गिरिधर राय [१७७०-१८३०]

सुवा एक दाड़िम के धोके खयो नारियल खान।
कछु खायो कछु खानन पायो, फिर लागो पछितान ॥
फिर लागो पछितान बुद्धि अपनी को रोवा।
निगुणियन के साथ बैठि अपने गुण खोआ ॥
कह गिरधर कवि राय, सुनो रो मोरे नोखे।
गयो झटाका टूटि चोंच दाडिम के धोखे ॥१॥
भूलो चातक आइकै, घटा धुवाँ को देखि।
यह जानी जस जलज है, वादर श्याम विशेखि।
वादर श्याम विशेखि देखि तकिता को धायो।
इक समय संकट परे कौन का के घर आयो।
कह गिरधर कविराय धुंवा को यह फल पायो।
जो जल को गयो सोई नयनन जल आयो ॥२॥
मोती लादन पिन गये, धुर पटना गुजरात।
मोती मिले न पिव मिले, युग भर बीती रात ॥
युग भरि बीती रात विरहिनी सतावै।
चौंकि परि व्रज नारि पिया को लिखा न आवै !
कह गिरधर कविराय गोपिका यह कह रोती ॥
आगि लगैं वह देश जहां उपजत है मोती ॥३॥
मित्र बिछोहा अति कठिन, मती दीजैं करतार।
वाके गुण जब चित चढैं, वर्षत नयन अपार।
वर्षत नयन अपार, मेघ सावन झरि लाई।

अब बिछुरे कब मिलो, कहो कैसी बन आई।
कह गिरिधर कविराय, सुनो हो बिनती एहा।
हे करतार दयालु देहु जनि मित्र बिछोहा ॥४॥
दादुर केर दरेइ फर, लैं फण पनि निज शीश।
समय आपनो जानिकै, मन ही न लायो ईश॥
मन ही न लायो ईश, शीश पर बोल्यो भाई।
पर्यो आपदा आप लाज पति सबै गंवाई॥
कह गिरिधर कविराय कहाँ लैं आनी आदर।
गुणकी म.ि घटि गई शीश पर बोले दादुर ॥५॥
पीवैं नीरत सरवरो, बूंद स्वाति की आश।
केहरि तृण नहीं चरिसकै, जो व्रत करे पचाश।
जो व्रत करे पचाश, विपुल गज युत्थ विदारै।
सुपुरूष तजेन धीर, जीव बरु कोऊ मारै॥
कह गिरिधर कविराय, जीव जो धकभरि जीवैं।
चानक बरु मरि जाय नीर सरवरनहिं पीवै ॥६॥
मूसा कहै बिलार सों, सुनरे झूठ झुठैल।
हम निकसत हैं सैर को, तुम बैंठत हो गैल॥
तुम बैठत हो गैल कचरि धक्कन सों जैंहो।
तुम हो निपट गरीब कहा घर बैंठे खइहौ।
कह गिरिधर कविराय बात सुनिये हो हूसा।
बाउ दिनन का फेर बिलारिहि सिसवैं मूसा ॥७॥
कौना कहे मराल से, कहा जाति कह गोत।

तुम ऐसे बद रूपिया, कहु न जग में होत।
कहुँ न जग में होत महा मेले, मल खाना॥
बैठि कचहरी जाय, वेद मर्याद न जाना।
कह गिरिधर कविराय सुनो हो पंछी हौवा।
धन्य मुल्क यह देश जहाँ के राजा कौवा॥८॥
हुक्का बाँधो फेंट में, नैग हि लीन्ही हाथ।
चले राह में जात हैं, लिये तमाखू साथ।
लिये तमाखू साथ गैल को धंधा भूल्यो।
गह सब चिन्ता भूलि आगि देखत मन फूल्यो।

कह गिरिधर कविराय, जो यम कर आयो रुक्का।
जिलै गयो जो काल, हाथ में रहिगा हुक्का॥
गिरिधर सो जो गिरिधरं प्रयत्न शून्य विन खेद।
गिरि कारण सूक्ष्म स्थूल तनु गिरिधर प्रत्येक वेद =
गिरिधर प्रत्येक वेद जो है नित ही प्रापत।
विना श्रोत्र ध्वनि सुने वाक बिन शब्द अलापत॥
कह गिरिधर कविराय जासमें नहीं मित्र अर।
सब को आपन आप आतमा सों तू गिरिधर॥

कोप करै जिस शख्स पर, परमेश्वर जब आय।
लोकन साथ मिलाप पुनि, चाहै दिन अरु रात॥

चहै दिन अरु रात बासना उपजै खोटी।
कृपणता के लिये बुद्धि हो जावे मोटी॥
कह गिरिधर कविराय आप नो करिकै लोप।

अनातम चिन्तन करै, यही ईश्वर को कोप ॥
करै कृपा जिस पुरुष पर, अतिशय करिकै राम ।
ताको कोई ना फुरै, लौकिक वैदिक काम ॥
लौकिक वैदिक काम रहैं नहिं करनो बाकी ।
हर जगा, हर वखत, ब्रह्म की होवै झाँकी ॥
कह गिरिधर कविराय, अविद्या जिसकी मरै ।
सर्व क्रिया के माहिं एक खुद दर्शन करै ॥
भाग्य सर्वत्र फ़लत है, न च विद्या पौरुष सरल ।
हरि हर मिल सागर मथ्यो, हर को मिल्यो गरल ॥
हर को मिल्यो गरल, हरी ने लक्ष्मी पाई ।
षट भग दो सम्पन्न भाग की कही न जाई ॥
कह गिरिधर कविराय, कोउ मिल खेलैं फाग ।
कोउ हमेशा रोवैं आपो अपने भाग ॥
अवश्यमेव भोक्तव्य है, कृत कर्म शुभाशुभ जोय ।
ज्ञानी हंस करि भोग हैं, अज्ञानी भोगे रोय ॥
अज्ञानी भोगै रोय पुनि पुनि मस्तक कूटै ।
प्रारब्ध हो जोय, बिना भोग नहीं छूटै ॥
कह गिरिधर कविराय न दीरघ होत रहस्य ।
जैसे जैसे भाग पुरुष के फलैं अवश्य ॥
जैसा यह मन भूत है, और न दुतिय बताल ।
छिन में चढै अकाश को, छिन में धसै पताल ॥
छिन में धसै पताल होत छिन में कम जादा ।

छिन में शहर निवास करै, छिन बन का रादा॥
कह गिरिधर बिन ज्ञान चित्त थिर होत न ऐसा।
गुरु, अनुग्रह बिना बोध दृढ़ होत न जैसा॥

ताप मध्य में ताप हूं, ना मैं ताप अताप।
जाप मध्य में जाप हूं, ना मैं जाप अजाप॥
ना मैं जाप अजाप आपको आप प्रकाशक।
सूक्षम स्थूल प्रपंच सर्व को इक रस भासक॥
कह गिरिधर कविराय पाप मैं पाप अपाप।
जामें जाय सिरात अष्ट ज्वर जो है ताप॥
करुणा हो श्रीराम की, औ गुरु को परताप।
पुनः पुरुषार्थ आपनो, कटै अविद्या पाप॥
कटै अविद्या पाप जुड़े जो यह संयोग।
देह इन्द्रिय मन प्राण माँहि कोउ रहे न रोग॥
कह गिरिधर कवि राय छुटै जब जन्म अरु मरना।
कृत कृत्य भयो पुमान बहुरि कछु रहे ना करना॥

महा कवि गिरिधर की कविता के कठिन शब्दों का अर्थ:—

सुवा=तोता। दाडिम अनार। जलज = कमल। पिव= पति। बिछोहा=वियोग। दादुर = मेंढक। सरोवर=तालाब। केहरि=केसरि, सिंह। मराल=हंस। अतिशयैं = अधिका। गरल=हलाहल विष। अवश्यमेव भोक्तव्य है=जरूर भोगना पड़ता है। थिर=स्थिर। बहुरि=फिर।

बाबा दीन दयाल गिरि(१८५६—१६१५)

कृष्णशोभा

जरन कमल राजै मंजु मंजीर बाजैं।
कामन लखि लजावैं हंस ऊनादिं पावैं॥
विसद कद्म छाहीं क्रीड़ते कुञ्ज माहीं।
लखि लखि हरी सोभा संभु को चित्त लोभा॥१॥
कनक वरन काछे काछनी धेनु पीछे।
बिरहन बनवारी कोय . के वेषधारी।
ललित लकुट हाथे मोर के पच्छ माथे।
सकल जगत स्वामी भानुजा तीर गामी॥२॥
विरहन जमुना के तीर मैं कृष्ण राजैं।
निरखि सुभग सोभा कोटि कन्दर्प लाजै।
अधर मधुर बंसी बजती चित्त हारी।
सुनत धुनिन ,मोहैं कौन है देहधारी॥३॥
सजल जलद वी के स्याम तैं होत फीके।
पट तड़ित विनिन्दै भूषि सो हैं गोविन्दै।
विलसति वनमाला वैजयन्ती विसाला।
चलत गति रसाला मोहते नन्दलाला॥४॥
कुटिल अलक सो हैं सीस चीरा लसो है।
मदम मन फंसो है स्याम अंगैं बसो है।
सकल नियम ताके भक्त के मे पताके।
निमि षबहुं जिन ताके धन्य ताके पिता के॥५॥

दोहे

हरि के सुमिरे दुख सबै लघु दीरघ अघ जाहिं।
जैसे केहरि भूरि भय करि मृग दूरि नसाहिं।१।
अधम मलीन प्रसंग तें,अधमै ही फल होत।
स्वाति अमृत अहि मुख पट, बनि विष होत उदोत।२।
साधुन को खल संग मैं आदर अंग नसाय।
तपित लोह सन्दोह मैं जिमि जल हू जलि जाय।३।
मानत हैं बहु दीन को आए सरन महान,
छीन कला ससि सीस मैं, धारन ईस सुजान।४।
परे विपत्ति मैं दुष्ट को मोचत नाहिं प्रवीन।
बन्धन तें अहि छुटि धरैं करैं प्रान ते हीन।५।
नीच महन के संग ते प्रापत पद सुमहान !
कीट कुसुम के संग करैं सिव सिर ऊपर थान।६।
सब विधि प्रबल बिरोध तें होति निबल की हानि।
युद्ध क्रुद्ध जुत करि करैं परैं तरुनि की खानि।७।
नीच संगतें सुजन की मानि हानि ह्वै जाय।
लोह कुटिल के संग तें सहै अगिन घन छाय।८।
नृप मानत हैं रूप कटि गुन हीन हु सो अंग।
गुञ्जा गुन ते रहित उ तुलसी कनक के संग।९।
बड़े बड़न के भार को सहैं न अधम गंवार।
साल तरुन में गज बन्धैं नहिं आँकन की डार।१०।
मलिन सुता के विमल सुत उपजत नहिं सन्देह।
होत पंक ते पदुम है पावन परमा गेह।११।

रसाल—अन्योक्ति

ज्ञानैं नहिं तन माधुरी मंद मरन्द सुगन्ध।
हे रसाल अज क्रूर कपि कोल क्रमेलक अंध॥
कोल क्रमेलक अन्ध फूल फल मूल विनासक।
साख विदार निहार दुखद द्रुति ग्रासक त्रासक॥
एकै दीनदयाल रसज्ञ सितीमुख मानै।
महापीत महि माँहु प्रीति महिमा तव जानैं॥

मधुकर अन्योक्ति

सोई विपिन विलोकिए हे मधुकर यदि बेरी।
हा छवि दही निदाघ अब रही राख की ढेरि॥
रही राख की ढेरि जहाँ देखो वहु सोभा।
लता सुमनमय देखि सुमन तेरो जहं लोभा॥
बरनैं दीन दयाल अहो दैवी गति गोई।
वहै भंवर तूं भूलि भवैं न विधि न यह सोई॥

वृक्ष अन्योक्ति

पाई तुम प्रभुता भली चहुं दिसि अलि गुञ्जार।
हे तरु तटिनी तीर के करलै कछु उपकार॥
करलै कछु उपकार आज रितुराज बिराजै।
डार सुमन के भार रहीं झुकि कै छवि छाजै॥
बरनै दीन दयाल पथिन पै छाँह सुहाई।
पच्छिन को प्रतिपाल कहै किन प्रभुता पाई॥

करील अन्योक्ति

धार्‌यो दल न करीर तुम वहुरितु राज न पाय।
यहै त्याग दिट देखि कै प्रिय कीन्यो जदुराय॥
प्रिय कीन्यौ जदुराय रमैं तव कुञ्जनि माहीं।
और सबै तरुराज ताहि दिसि देखत नाहीं॥

बरनै दीन दयाल, ऊंच नहिं नीच विचार्यो ।
जो जग धर्यो विराग ताहि हरि हित सों धार्यो ॥

चातक अन्योक्ति

लागे सर सरवर पर्यो करी चंच घन घोर ।
धनि धनि चातक प्रेम तव पन पाल्यो बरजोर ॥
पन पाल्यो बरजोर प्रान परिजंत निबाह्यो ।
कूप नदी नद सिन्धु ताल जल एक न चाह्यो ॥
बरनै दीन दयाल स्वांति बिन सब ही त्यागे ।
रही जनम भरि बून्द आस अज हूं सर लागे ॥

शुक अन्योक्ति

तजि कै दाडिम मूढ सुक खान गयो कित बेल ।
काँटनि सों बेंधित भयो भूलि गयो सब खेल ॥
भूलि गयो सब खेल पंख लासा लपटायो ।
गिर्यो राख मैं जाय जगत मैं काक कहायो ॥
बरनै दीन दयाल कहा खग रोवैं लजि कै ।
करुमनि कोधिक कोटि कठिन से यो मृदु तजिकै ॥

सिंह अन्योक्ति

टूटे नख रद केहरि वह बल गयो थकाय ।
हाय जरा अब आय कै यह दुख दयो बढाय ॥
यह दुख दयो बढ़ाय चहुं दिसि जम्बुक गाजैं ।
ससक लूम्बरी आदि सुतन्त्रा करैं बन राजैं ॥
बरनै दीन दयाल हरिन विहरैं सुख लूटैं ।
पंगु भयो मृगराज आज नख रद के टूटैं ॥

गज अन्योक्ति

तोरे मनि तरु मूल तें फूल सहित हित नूर ।
अरे निरंकुश द्विरद बद दुखद महा मद पूर ॥

दुखद महामद पूर लखैं नहिं या की सोभा।
कल दल मल सुख दानि सकल जग तातें लोभा॥
बरनै दीन दयाल प्रनय जो सब तें जोरे।
सो उपकारी मानि मीतता प्रीति न तोरै॥

चन्द्र अन्योक्ति

मैलो मृग धारै जगत नाम कलंकी जाग।
तऊ कियो न मयंक तुम सरनागत को त्याग॥
सरना गत को त्याग कियो नहिं ग्रसे राहु के।
सिए हिए मैं रहो तजहु नहिं कटे काहु के॥
बरनै दीन दयाल जाति मिस सो जस फैलो।
हो हरि को मन सही कहै खल पामर मैलो॥

नदी अन्योक्ति

वह गुन तो मैं हैं धुली अति पुनीत तव नीर।
राखत यह औगुन बड़ो वक मराल इक तीर॥
वक मराल इक तीर बड़ो छोटो नहिं जानति।
सेत सेत सब एक नहीं गुन दोष पिछानति॥
बरनै दीनदयाल चाल यह भली नहै सुनु।
जग में प्रगट विलाहिं एक औगुन ने बहु गुनु॥

कठिन शब्दों के अर्थ:—

मंजु=सुन्दर। भानुज्य=सूर्य की पुत्री=यमुना। कन्दर्प=कामदेव। तडित=बिजली। अलक=केश। अघ=पाप। पंक=कीचड़। सिलीमुखी=[सं० शिली मुख] भौंरा। निदाघ=ग्रीष्म=गरमी। दाड़िम = अनार। द्विरद = हाथी। सेत=सफेद।